कौल-कल्पतरु

चण्डी

वर्ष ४७] कार्तिक २०४५वि०—नवम्बर १९८८ [संख्या ८

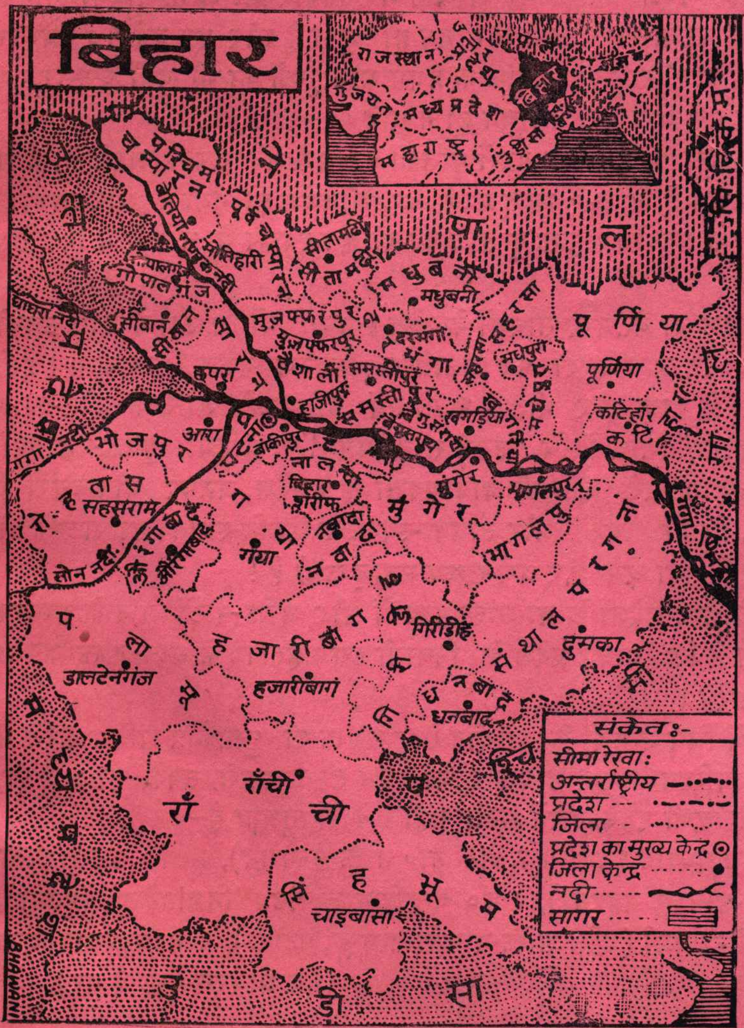

इस अंक में

१—सम्पादकीय
(आवरण-पृष्ठ २)

२—बिहार-प्रदेश के देवी मन्दिर
(पृष्ठ १ से २२)

३—शाक्त-संगोष्ठी-पटना
(पृष्ठ २३)

४—नव-योगिनी-स्तोत्र
श्री शिवशङ्कर श्रोत्रिय, भीलवाड़ा
(पृष्ठ २५-२६)

५—अहं ब्रह्मास्मि
श्री निशांतकेतु, पटना
(पृष्ठ २७-३०)

६—सहस्र-मन्त्र-सार-संग्रह
एक समालोचना
(पृष्ठ ३१)

७—जगदम्बा की सामूहिक उपासना
(आवरण-पृष्ठ ४)

वार्षिक शुल्क ४५-०० रु०

सम्पादकीय : बिहार के शक्ति-पीठ और देवी-मन्दिर

भारत के सभी प्रदेशों में अति प्राचीन काल से 'शक्ति-साधना' प्रचलित रही है किन्तु प्रतिकूल काल के प्रभाव से उसका ज्ञान लुप्त-प्राय हो चुका था। इधर 'चण्डी' पत्रिका के ४७ वर्ष के लगातार प्रकाशन से लोगों में पुनः उसके प्रति रुचि जाग्रत् हुई है। इस रुचि को विकसित और पुष्ट करने के लिए यह आवश्यक था कि प्रत्येक प्रदेश के दिवङ्गत और वर्तमान शाक्त साधकों का सचित्र परिचय प्रकाश में लाया जाय, साथ ही शक्ति-पीठों और देवी-मन्दिरों का भी सचित्र इतिहास प्रकाशित किया जाय। यह एक बहुत बड़ा कार्य था, फिर भी हमने अपने सीमित साधनों के अनुरूप इसे प्रारम्भ कर ही दिया। सबसे प्रथम 'बिहार प्रदेश' के प्रति हमारा ध्यान आकृष्ट हुआ क्योंकि 'वङ्गेनोत्पादिता विद्या, मैथिलेन च पालिता' के अनुसार 'शक्ति-साधना' के प्रचार-प्रसार में मिथिला का अपना विशेष महत्त्व रहा है। श्री जगदम्बा की कृपा और 'चण्डी'-पाठकों के सहयोग से 'बिहार में शक्ति-साधना' नामक पुस्तक का प्रकाशन होकर गत वर्ष के पटना-समारोह में विमोचन हो चुका है और इस वर्ष १७ नवम्बर को 'बिहार के शक्ति-पीठ एवं देवी-मन्दिर' नामक विशेषांक के प्रथम आठ पृष्ठों का भी वहीं जयसरमिन होटल (कंकड़बाग मार्ग) में आयोजित समारोह में विमोचन हो गया है।

इसमें सन्देह नहीं कि जिस रूप में हम उक्त दोनों पुस्तकों का प्रकाशन करना चाहते थे, वैसा नहीं हो पाया है। फिर भी हमें सन्तोष है कि इस महत् कार्य का श्रीगणेश हो गया है और आशा है कि बिहार के अध्यात्म-प्रेमी बन्धुओं के सहयोग से उक्त पुस्तकों को वांछित स्वरूप में भविष्य में विकसित किया जा सकेगा।

आवश्यक यह है कि दिवङ्गत या वर्तमान साधकों के श्वेत-श्याम चित्रों (फोटो) के साथ उनकी जन्म-तिथि, शिक्षा, साधना-विधि और उपलब्धियों पर प्रामाणिक विवरण एकत्र किया जाय। इसी प्रकार शक्ति-पीठों एवं देवी-मन्दिरों के वाह्य और भीतरी भागों एवं प्रतिमाओं आदि के श्वेत-श्याम चित्रों (फोटो) के सहित उनकी स्थापना/निर्माण-तिथि, उनसे सम्बन्धित किंवदन्तियों, पूजन-पद्धतियों, लोगों की अनुभूतियों आदि का इतिहास लिखे जाने की आवश्यकता है। प्रदेश, जनपद और नगरों के नक्शों का भी प्रकाशन आवश्यक है, जिससे साधकों और साधना-स्थलों के स्थिति-स्थान का पाठकों को बोध हो सके। स्पष्ट है कि यह सब कितना श्रम और अर्थ-साध्य महान् कार्य है!

बिहार-प्रदेश के समान ही अन्य प्रदेशों के भी शाक्त साधकों और शक्ति-पीठों आदि के सम्बन्ध में पुस्तकें प्रकाशित होनी हैं। आशा है कि प्रत्येक प्रदेश के निवासी इस महत्कार्य में यथा-शक्ति अपना सहयोग हमें प्रदान करने की कृपा करेंगे।

बिहार-प्रदेश के सम्बन्ध में जिन बन्धुओं के सहयोग से हम उक्त दो पुस्तकें प्रकाशित करने में समर्थ हुए हैं, उन्हें यहाँ सादर अभिनन्दित करना उचित होगा। हम तो हृदय से उनके कृतज्ञ हैं ही, सारे देश-वासी उनके इस सहयोग के ऋणी रहेंगे, इसमें सन्देह नहीं। वे महानुभाव हैं—

सर्वश्री : १ पं० गोविन्दशरण उपाध्याय (उपाध्यक्ष, अ० भा० शाक्त-सम्मेलन), २ पं० कमलाकान्त मिश्र (अध्यक्ष, अद्वैत शक्ति-साधना-सत्सङ्ग, सहरसा), ३ पं० चन्द्रकिशोर पांडेय 'निशांतकेतु', (पटना), ४ एन० वी० मेहता (बम्बई), ५ शैलेन्द्र वर्मा (अद्वैत शक्ति-साधना-सत्सङ्ग, पटोरी), ६ मथुराप्रसाद दास

(शेष आवरण-पृष्ठ ३ पर)

'कौल-कल्पतरु' चण्डी

वर्ष ४७] कार्तिक २०४५ वि०—नवम्बर १९८८ [संख्या ८

बिहार में शक्ति-साधना

प्राचीन शक्ति-पीठ, प्रसिद्ध देवी-स्थान एवं शाक्त-संस्थायें

सम्पादक : 'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल : : ऋतशील शर्मा

पटना नगर की अधिष्ठात्री

श्री पटन देवी

श्री रामजी मिश्र 'मनोहर', सचिव सह-निदेशक

बिहार पत्रकारिता-संस्थान एवं संग्रहालय, डा० विश्वेश्वरदत्त मिश्र पथ, पटना (बिहार)–८०००० ८

हिन्दू-धर्मावलम्बियों के अनुसार **'पटन देवी'** पटना नगर की अधिष्ठात्री देवी एवं परि-रक्षिका शक्ति हैं। **'पटन देवी'** भारतवर्ष के ५१ शक्ति-पीठों की अधिष्ठात्री देवियों में से एक हैं। पुराणों और आगमों के अनुसार दक्ष-पुत्री सती के अङ्ग जिन ५१ स्थानों में गिरे, वे 'शक्ति-पीठ' कहलाए।

पटना-क्षेत्र में सती का **'पट'** गिरा था, जिसके कारण 'पटना-शक्ति-पीठ' की अधिष्ठात्री देवी का नाम **'पटन देवी'** पड़ा।

अन्य मत के अनुसार इस नगर का पुराना नाम पाटलिपुत्र-पत्तन था। अतः नगर की देवी होने के कारण इन्हें पत्तन देवी के रूप में अभिहित किया गया।

पटना नगर तथा आस-पास के निवासी हर हिन्दू-परिवार के लिए जन्म से विवाह तक, हर माङ्गलिक अवसर पर **'पटन देवी'** की पूजा-अर्चना अनिवार्य-सी है। वैसे तो प्रति-दिन यहाँ दर्शनार्थियों की भीड़ लगी रहती है, परन्तु नवरात्रि के अवसर पर यहाँ नर-नारियों की भीड़ उमड़ पड़ती है।

यहाँ **'पटन देवी'** की दो प्रतिष्ठाएँ हैं—एक बड़ी और दूसरी छोटी। 'बड़ी पटन देवी' गुलजार-बाग में राजकीय मुद्रणालय के दक्षिण महाराजगंज में, अशोक राज-पथ तथा शेरशाह पथ के बीच, स्थित हैं। 'छोटी पटन देवी' हाजीगंज और हरि-मन्दिर गली के बीच में विराजमान हैं। दोनों ही मन्दिरों के पुजारी अपने-अपने मन्दिर को एक-दूसरे से अधिक प्राचीन बताते हैं।

भवन की बनावट तथा पुरातत्त्व की दृष्टि से 'छोटी पटन देवी' अधिक प्राचीन मालूम पड़ती हैं। कहते हैं कि शिव जी जब सती के शव को अपने कन्धे पर टाँगे हुए आकाश में विचरण कर रहे थे, उस समय सती के प्रत्येक अङ्ग कटकर देश के विभिन्न भागों में गिरे। पटने में जहाँ उनका **'पट'** गिरा, वहीं छोटी पटन देवी स्थापित हैं। यहाँ एक कुएँ में उक्त 'पट' (वस्त्र) गिरा था। वह कुआँ मन्दिर के प्राङ्गण में अभी तक सुरक्षित है।

एक कथा यह भी है कि पटन देवी को वर्तमान रूप में पाटलिपुत्र के राजा सुदर्शन की पुत्री पाटलि ने प्रतिष्ठित किया, जो इस प्राचीन नगर को, जो अब पटना के नाम से विख्यात है, पुत्र-वत् मानती थीं। इसी कारण इसका नाम 'पाटलिपुत्र' पड़ा। फ्रांसिस बकनन (बाद में हेमिण्टन) सन् १८११-१२ में पटन आये थे। उन्होंने अपने सर्वेक्षण में पटन देवी की चर्चा विस्तार से की है। उन्होंने लिखा है कि छोटी पटना देवी को वर्तमान स्वरूप अकबर के प्रसिद्ध सेनापति राजा मानसिंह ने प्रदान किया। इसके भवन के सम्बन्ध में कोई उल्लेखनीय बात नहीं है, परन्तु 'बड़ी पटन देवी' की तुलना में यहाँ आनेवाले दर्शनार्थियों की संख्या अधिक है। कनौजिया (कान्यकुब्ज) ब्राह्मण इस 'पीठ' के पुजारी हैं।

'पटना कारपोरेशन शताब्दी-स्मृति-ग्रन्थ' में डाक्टर श्रीकृष्ण उपाध्याय ने लिखा है—'प्राचीन काल में पाटलिपुत्र की पाट-महिषी पटलावती को स्वप्न हुआ। स्वप्न के अनुसार उन्होंने खुदाई करायी, जिससे तीन मूर्तियाँ निकलीं, जो बड़ी पटन देवी में सिंहासनस्था हैं। मन्दिर के पीछे 'बड़ी पटन देवी खन्धा' के नाम से विख्यात गड्ढा वही स्थान है, जहाँ से खोदकर ये मूर्तियाँ निकाली गयी थीं।'

फ्रांसिस बकनन ने लिखा है—'...मन्दिर के पुजारी का कहना है कि यह मन्दिर सृष्टि के आरम्भ से है। मन्दिर बहुत छोटा और साधारण ढंग से बना हुआ है। पुजारियों ने अपने धन से इसे बनवाया है। इस मन्दिर के पुजारी कनौजिया ब्राह्मण हैं। यहाँ प्रति शनिवार तथा मङ्गलवार को बड़ी संख्या में बकरों की बलि चढ़ायी जाती है...।' 'बड़ी पटन देवी' के पुजारी इन दिनों मैथिल ब्राह्मण हैं। बलि चढ़ाने की प्रथा यहाँ निरन्तर प्रचलित है।

डाक्टर डी० आर० पाटिल ने भी अपनी पुस्तक 'एण्टिक्वेरियन रिमेन्स इन बिहार' में इन दोनों पटन देवियों की चर्चा करते हुए फ्रांसिस बकनन तथा श्री मनोरंजन घोष के विवरणों का संक्षिप्त उल्लेख करते हुए लिखा है कि दोनों पटन देवियों के इतिहास या पुरा-तत्त्व के सम्बन्ध में कोई लिखित सामग्री नहीं मिलती। यहाँ दुर्गा, लक्ष्मी एवं सरस्वती की तीन छोटी प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं।

छोटी पटन देवी में अब बलि नहीं चढ़ाई जाती। इस स्थान में भगवान् सूर्य तथा विष्णु की प्रतिमाएँ भी हैं। भगवान् सूर्य की एक अति-सुन्दर मानवाकार प्रतिमा मन्दिर के प्राङ्गण में ही खुदाई करने के समय निकली थी, जो मन्दिर के पिछवाड़े उपेक्षित दशा में पड़ी है। बहुत दिनों तक इस प्रतिमा में गाय-भैंस बाँधने का काम लिया गया, जिसके फल-स्वरूप इसके दो टुकड़े हो गए और आज भी वह मैदान में पूर्व-वत् उपेक्षित पड़ी है।

'पटन देवी' को ५१ शक्ति-पीठों में एक पीठ होना ही चाहिये, क्योंकि 'तन्त्र-चूड़ामणि' के अनुसार सती की दक्षिण जंघा मगध में गिरी थी। वहाँ इस पीठ की अधिष्ठात्री देवी का नाम **'सर्वानन्द-करी'** बताया है और उनके शिव **'व्योमकेश'** कहे गये हैं।

कुछ लोगों का मत है कि सती का पट जिस स्थान पर गिरा, वहाँ पर जो मन्दिर बना, वह पटन देवी कहलाया। कुछ लोगों का विचार है कि जिस स्थान पर उनकी दक्षिण जंघा गिरी, वहीं पटन देवी विराजमान हैं। जो भी हो, इसमें संदेह नहीं कि प्रयाग, वाराणसी, कामाख्या आदि शक्ति-पीठों के समान पटना भी एक प्राचीन शक्ति-पीठ है।

***

मां काली का दर्शनीय मन्दिर

पटना के गोलघर चौराहे से लगभग ३०० गज पश्चिम की ओर गङ्गा के किनारे (बाँसघाट श्मशान) के निकट मां काली का एक दर्शनीय मन्दिर है। इस मन्दिर की स्थापना सन् १९६४ के आस-पास की गई। मन्दिर के पास ही ब्रह्मनाथ औघड़ की समाधि है। प्राचीन समय से यह 'सतीचौरा' के नाम से भी प्रख्यात है। मन्दिर का अधिकांश कुछ वर्ष खपरैल-युक्त था। सन् १९७८-७९ में श्मशान की अग्नि उड़कर अचानक मन्दिर के खपरैल में लग जाने से जल गई परन्तु यह स्थान का प्रताप ही है कि इधर कुछ वर्षों में मन्दिर का आशातीत विकास हुआ है और विकास का यह क्रम निरन्तर चल रहा है।

प्रति मङ्गल और शनिवार को यहाँ भगवती के भक्तों की अच्छी भीड़ लगती है, जो मन्दिर से सम्बन्धित आयोजनों में बड़े उत्साह से भाग लेती है। विशेष कर यहाँ होनेवाली नवरात्र-पूजा, काली पूजा आदि देखने योग्य होती हैं। भगवती श्मशान-काली के अतिरिक्त श्री जगदम्बा के अन्य विग्रहों श्री त्रिपुरसुन्दरी षोडशी आदि के भी विग्रह यहाँ प्रतिष्ठित हैं।

***

भगवती पट्टनेश्वरी

श्री विजय वत्स, प्रतिनिधि 'सम्पादक की वाणी' स्मारिका

ए/६ प्रोफेसर्स कालोनी, सैदपुर, पटना (बिहार)

इतिहास के पृष्ठों में 'पाटलिपुत्र' जैन एवं बौद्ध धर्मों के सन्दर्भ में अतिशय चर्चित है, परन्तु अनादि-काल से शक्ति की लोक-साधना का जो शाश्वत अन्तर्प्रवाह पाटलिपुत्र-वासियों को अनुप्राणित करता रहा है, वह आज भी प्रच्छन्न अनुभूत है। 'पटना सिटी' के नाम से आजकल प्रसिद्ध प्राचीन 'पाटलिपुत्र' के अंक में अनेक शक्ति-मन्दिर दृष्टि-गोचर होते हैं, यथा—छोटी पटनदेवी एवं बड़ी पटन देवी मन्दिर, गांधी-सरोवर स्थित काली-मन्दिर, अगम कुआँ का शीतला-मन्दिर, चौहट्टा-स्थित महा-सरस्वती मन्दिर, खाजेकलाँ का काली-मन्दिर, गुलजारबाग का सर्व-मङ्गला-मन्दिर, गुड़ की मण्डी का पीताम्बरा-मन्दिर, बक्सी मुहल्ले का सीता-मन्दिर आदि।

'पाटलिपुत्र' का 'पटना'-नाम निश्चित रूप से संस्कृत-शब्द 'पट्टनम्' का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ जल-परिवहन से सम्बन्ध व्यापारिक नगर होता है। गङ्गा-तट पर अवस्थित होने के कारण प्राचीन काल में पाटलिपुत्र नगर का विकास एक ऐसे ही व्यापारिक केन्द्र के रूप में हुआ है। अस्तु, पाटलिपुत्र की पीठासीन देवी का नाम 'पटन देवी' या 'पट्टनेश्वरी' प्रसिद्ध हुआ। पटन देवी के नाम से यहाँ दो मन्दिर हैं—'दियारा' क्षेत्र में तख्त श्री हरि-मन्दिर गुरुद्वारा के समीप 'छोटी पटन देवी का मन्दिर' और गुलजार बाग स्थित 'बड़ी पटन देवी का मन्दिर'।

इस मन्दिर के निर्माण की कथा अत्यन्त रोमाञ्चक है। कहते हैं, किसी रात्रि को पाटलिपुत्र की पट्ट-महिषी पाटलावती को स्वप्न हुआ। स्वप्नानुसार मन्दिर के समीपस्थ एक स्थान की खुदाई करवाने पर भगवती महा-काली, महा-लक्ष्मी एवं महा-सरस्वती की तीन मूर्तियाँ निकलीं, जिन्हें विधिवत् स्थापित कर मन्दिर का निर्माण करवाया गया। आज भी यह स्थान 'पटन देवी' का 'गड्ढा' के नाम से प्रसिद्ध है। मन्दिर के प्राङ्गण में किसी ऐतिहासिक सूचना का कोई स्रोत नहीं है परन्तु वहाँ लगे सूचना-पट्ट के अनुसार इसी स्थान पर भगवती सती की दक्ष-जंघा का पतन हुआ था। मन्दिर अपेक्षाकृत भव्य और आधुनिक स्वरूप-प्रदत्त है। मन्दिर के विस्तृत क्षेत्र में कर्म-काण्डीय गतिविधियों की चहल-पहल सदैव बनी रहती है।

पुरातत्व-विभाग के सूचना-पट्ट से यह स्पष्ट है कि इस मन्दिर का निर्माण १६ वीं शताब्दी में अकबर के प्रसिद्ध सेनापति राजा मानसिंह द्वारा करवाया गया था। अब यह मन्दिर पुरातत्त्व-विभाग के नियन्त्रणाधीन है, परन्तु खेद की बात है कि मन्दिर की अवस्था दिनानुदिन जीर्ण-शीर्ण होती जा रही है। इस मन्दिर में भी त्रिगुणात्मिका भगवती आद्या महा-लक्ष्मी की विग्रहत्रयी—महा-काली, महा-लक्ष्मी एवं महा-सरस्वती के रूप में 'भगवती पट्टनेश्वरी' प्रतिष्ठित हैं। किंवदन्ती है कि एक प्रसिद्ध बंगाली तान्त्रिक ने अपनी कुमारी कन्या के द्वारा, इनकी स्थापना करवाई थी। मूर्ति के समक्ष एक प्रस्तर-खण्ड पर कमल-दल-रूप मेरु बना है।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि यहाँ भगवती सती का 'पटाम्बर' गिरा था। कुछ अति-विश्वासी भक्तों की यह धारणा है कि यहाँ भगवती का 'पृष्ठ-भाग' गिरा था। लोक-भाषा में यह भाग 'पट' (उल्टा) कहा जाता है। अतः देवी का नाम 'पटन देवी' पड़ा, परन्तु यह विश्वास प्रामाणिकता के कितने समीप है, कुछ कहा नहीं जा सकता।

ज्ञातव्य है कि तीन वर्ष पूर्व मन्दिर की छत गिर जाने पर भगवती का पीठ-स्थल, जो मिट्टी का बना है, अनवरत धूप, वर्षा और शीत झेलते हुये भी तज्जन्य सम्भावित क्षरण से सर्वथा मुक्त रहा है और पीठ पूर्णतः यथावत् है। इसी पीठ के बाईं ओर पीठ-भैरव के प्रतीक-स्वरूप ताम्र-मण्डित विशाल शिव-लिङ्ग स्थापित है।

प्रख्यात पौराणिक आख्यान के अनुसार दक्ष-यज्ञ में दग्ध भगवती सती का मृत शरीर लेकर भगवान् शिव अत्यन्त क्रुद्ध होकर विक्षिप्त-वत् त्रैलोक्य में विचरण करने लगे। सम्पूर्ण सृष्टि भयाकुल हो उठी, पृथ्वी पाताल में धँसने लगी। परम चिन्तित देव-गण भगवान् विष्णु के पास आये। सती का मृत शरीर शिव-स्पर्श में रहते हुये कदापि क्षीण नहीं हो सकता था। अतः भगवान् विष्णु ने सती के शरीर को अपने सुदर्शन-चक्र से खण्डित करना प्रारम्भ कर दिया। सती के चक्रावछिन्न अङ्ग-प्रत्यङ्ग और आभरण जिन स्थानों पर गिरे, उनमें ५१ स्थान सिद्ध-पीठ और देवी-भागवतानुसार कुल १०८ स्थान शक्ति-पीठों के रूप में विख्यात हुये। पाटलिपुत्र इन्हीं १०८ शक्ति-पीठों में से एक है।

शक्ति-पीठों की अवस्थिति को लेकर विद्वानों में तीव्र मतभेद हैं। इसी प्रकार पाटलिपुत्र में दो पटनदेवी मन्दिर का होना थोड़ा संशय में डाल देता है। दिव्यगण तो विश्व-रूपा का विश्व के कण-कण में दर्शन करते हैं, परन्तु जहाँ तक पौराणिकता का प्रश्न है, उक्त संशय स्वाभाविक भी है। कुछ विद्वान् 'तन्त्र-चूड़ामणि' की निम्नलिखित उक्ति के आधार पर बड़ी पटन देवी स्थान को ही शक्ति-पीठ मानते हैं—

"मगधे दक्ष-जंघा मे व्योमकेशस्तु भैरवः। सर्वानन्द करी देवी सर्वानन्द-फल-प्रदा ॥"

परन्तु उल्लेखनीय है कि मगध का क्षेत्र पाटलिपुत्र तक ही सीमित नहीं था। यह राजगृह और गया से भी आगे तक विस्तृत था। पूरे मगध-क्षेत्र में इस समय चार स्थान शक्ति-पीठ माने जाते हैं —छोटी पटन देवी, बड़ी पटन देवी, राजगृह का महा-काली मन्दिर एवं गया का मंगला-गौरी मन्दिर। 'शक्ति-पीठ-रहस्य' नामक निबन्ध में स्वामी करपात्री जी महाराज के अनुसार राजगृह में सती का बस्ति-प्रदेश गिरा था तथा दक्ष-जंघा का पतन-स्थान योगिनी-पीठ होना चाहिए, परन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। मन्दिर के स्थापत्य और परिवेश से छोटी पटन देवी स्थान शक्ति-पीठ ही प्रतीत होता है।

'छोटी पटन देवी' का यह क्षेत्र 'दियारा' के नाम से जाना जाता है। इसके निकट ही एक प्राचीन काली-मन्दिर है, जहाँ स्वयं कालिदास ने अपने मगध-प्रवास के क्रम में भगवती काली का पूजन-अर्चन किया था। प्राचीन काल में गङ्गा एवं शोणभद्र के इस सङ्गम पर एक श्मशान था, जहाँ तान्त्रिक साधनाएँ की जाती थीं। ज्ञातव्य है कि 'छोटी पटन देवी' नगर के पूर्वी द्वार पर स्थित हैं, जब कि 'बड़ी पटन देवी' नगर के पश्चिमी द्वार पर। सम्भव है कि भगवती पट्टनेश्वरी नगर के दोनों ही छोरों पर नगर की रक्षिका देवी के रूप में प्रादुर्भूत हुई हों। और फिर पौराणिक गवेषणाएँ यदा-कदा अत्यन्त भ्रमित भी कर देती हैं। अतः प्रामाणिक रूप से कौन-सा शक्ति-पीठ है, इस विवाद में उलझने से बचते हुए शक्ति-पीठों के निर्माण की पृष्ठ-भूमि में जो दार्शनिक तत्त्व हैं, उन्हें ही हृदयङ्गम करना ज्यादा श्रेयस्कर होगा।

असीम कर्म-दक्षता, बौद्धिकता, पाण्डित्य और वाग्मिता से सम्पन्न होते हुए भी जो ईश्वर-विमुख होते हैं, वे ही 'दक्ष' हैं। उनकी अहङ्कार-मूलक कृति ही 'सती' है, जो वस्तुतः ईश्वर की ही क्रिया-शील अवस्था है। अनन्त विश्व में वर्तमान, जाग्रत् प्रज्ञा-पुरुष स्वयं 'शिव' हैं, जो दक्षों के वैकृतिक कृतित्व से ध्वंसाभिमुख होते हैं। प्राण-रूप विष्णु, स्थिति, पालन और भोग के उद्देश्य से दक्षों की प्रलयंकारी विकृति को अवच्छिन्न करते हैं। यह विकृति भी "द्विविधा प्रकृतिर्ज्ञेया" के अनुसार प्रकृति का ही भेद है। अतः उसका नियन्त्रण एवं परिसीमन भी एक साधना ही है। तन्त्रों में उल्लिखित वीर-साधना इसी ओर संकेत करती है। अतः निर्विवाद रूप से जहाँ भी हमारे मनोविकार नष्ट हों, हमें ईश्वराभिमुखी प्रेरणा मिले और हमारी श्रद्धा एवं आस्था बलवती होती हों, वास्तव में वही तो शक्ति-पीठ है।

'छोटी पटन देवी' के समीप ही एक उद्यान है, जिसमें गुरु गोविन्द जी महाराज बाल-लीलाएँ किया करते थे। भगवती पट्टनेश्वरी की कृपा-दृष्टि से उनके बाल-मन में भक्ति के अंकुर फूटे हों, तो क्या आश्चर्य ! तभी तो भक्ति-भावापन्न होकर वे भवानी से यह कहते हुए पाये जाते हैं—

"देहि शिवा वर मोहि इहै, शुभ कर मन से कबहूँ न टरौं"

***

पटना, भिखना पहाड़ी पर अवस्थित—

श्री मंगला गौरी

पटना के चार ऐतिहासिक कुएँ प्रख्यात हैं—१. अगम कुआँ, २. कदम कुआँ, ३. मखनिया कुआँ और ४. मङ्गला गौरी कुआँ। ये चारों कुएँ महान् अशोक के समय से प्रसिद्ध हैं। भिखना पहाड़ी उन दिनों बौद्ध भिक्षुओं का केन्द्र थी। यह आश्चर्य की ही बात है कि जब बिहार में बौद्ध धर्म अपने उच्चतम उत्कर्ष पर था, उस समय प्राचीन पाटलिपुत्र के मध्य स्थल में भगवती दुर्गा की पूजा कैसे होती रही ! भिखना पहाड़ी पर अवस्थित **'मङ्गला गौरी कुआँ'** आज भी इस ऐतिहासिक विलक्षणता का निदर्शक है। अपार गहरे कुएँ की छोटी-छोटी पुरानी ईंटें अतीत की कितनी ही रहस्य-मयी कथाओं से भक्तों और दर्शकों को रोमाञ्चित कर देती हैं।

कालान्तर में भारत से बौद्ध-धर्म का प्रभाव समाप्त हुआ, साथ ही पाटलिपुत्र भी महिमा-रहित हो गया। उनके साथ ही मंगला गौरी कुआँ भी विस्मृति के पर्दे में छिप-सा गया। यहाँ तक कि पटना के इस क्षेत्र में एक शती पूर्व जङ्गल-ही-जङ्गल दिखाई देने लगा था, सर्प फुफकारा करते थे और डाकुओं ने अपने अड्डे बना लिए थे। दिन में भी कोई उधर जाने का साहस नहीं कर पाता था किन्तु प्रतापी मनुष्य वहाँ भी पहुँच कर मानते हैं, जहाँ देवता पार नहीं पाते।

लगभग ६० वर्ष पूर्व श्री जगदम्बा के एक श्रेष्ठ उपासक पण्डित जयगोविन्द झा का ध्यान उक्त पवित्र स्थान के प्रति आकृष्ट हुआ और वे उस बीहड़ स्थान के 'मङ्गला गौरी कुआँ' पर माँ दुर्गा की साधना में तत्पर हो गए। उस समय वह स्थान टूटी ईंटों के एक खण्डहर के रूप में था, मन्दिर सर्वथा ध्वस्त हो चुका था। श्री झा जी के सुपुत्र ज्योतिषाचार्य पण्डित चक्रधर झा का जन्म १ अप्रैल, १६३० को हुआ और जब वे मात्र ११ वर्ष के किशोर थे, उन्होंने स्वप्न में देखा कि एक तेजोमयी स्त्री उस भग्न मन्दिर में प्रवेश कर रही है। यह स्वप्न जब उन्होंने अपने पूज्य पिताश्री को बताया, तो पण्डित जयगोविन्द झा तुरन्त समझ गए कि भगवती मङ्गला गौरी ने ही उनके पुत्र को दर्शन दिए हैं।

स्वप्न-दर्शन के बाद से ही पं० चक्रधर झा के मन में उक्त मन्दिर को बनवाने और उसमें माँ की एक प्रतिमा प्रतिष्ठित करने का सङ्कल्प अंकुरित हो उठा किन्तु ४६ वर्षों तक उस दिशा में वे कुछ कर नहीं पाये। समय बीतने के साथ वे ज्योतिषाचार्य और हस्त-रेखा-विशेषज्ञ के रूप में ख्याति अर्जित करते गए। साथ ही अपने सङ्कल्प की पूर्ति के उद्योग में भी लगे रहे।

१८ वर्ष की आयु से ही अपने पूज्य पिताश्री के निर्देशानुसार आप माँ की पूजा तो करते ही रहे, संस्कृत के विद्वान् हो जाने पर आपकी वह पूजा विधिवत् साधना के रूप में परिणत हो गई। सन् १६७५ में इसी साधना के क्रम में आप चौथी बार कामाख्या-धाम पहुँचे। वहाँ आषाढ़ के नवरात्र में भगवती दुर्गा की उपासना फलाहार करते हुए आपने की। कुमारी-पूजा के अन्तर्गत सात वर्ष की कन्या ने आपके मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया कि 'पटना में जिस भगवती-स्थान पर तुम रहते हो, उस स्थान का तुम जीर्णोद्धार करोगे। सभी विघ्न-बाधाएँ दूर होंगी और तुम्हारे हाथ से मन्दिर बनेगा, जिसमें तुम सिंह-वाहिनी चतुर्भुजा दुर्गा की प्रतिष्ठा करोगे।'

उक्त विलक्षण आशीर्वाद पाकर झा जी चकित हो गए। आपकी मनोकामना भी चिर काल से यही थी। पुलकित होकर आपने कहा कि 'आपकी वाणी के अनुसार कार्य सम्पन्न हो जाने पर मैं पुनः यहाँ आकर विधि-विधान-पूर्वक कुमारी-पूजन करूँगा।'

पटना वापस आने पर आपके अनुष्ठानों के फल-स्वरूप एक आय-कर अधिकारी श्री रजनीकान्त जी एवं उनके दो अन्य साथियों को सन्तान-लाभ हुआ। फलतः उनके सहयोग से अशोक-कालीन उक्त मन्दिर का जीर्णोद्धार-कार्य सहज ही हो गया। जीर्णोद्धार के उपलक्ष्य में जो पूजनादि-समारोह हुए, उनमें भक्त जनता के सहयोग से लगभग तीन हजार रुपए भी एकत्र हो गए। तत्काल ही झा जी का ध्यान श्री मङ्गला-गौरी के पूजा-पीठ पर गया और आपके मन में यह विचार आया कि यहाँ १/२ फीट चौड़ी तथा ४½ फीट लम्बी प्रतिमा स्थापित हो, तो अभीष्ट शोभा मन्दिर की होगी।

भगवती की प्रतिमा हेतु अपनी पत्नी श्रीमती सत्यवती देवी और उनके भाईसपत्नीक पं० कालीचरण मिश्र के साथ जनवरी, १६७७ में आप जयपुर जा पहुँचे। वहाँ के मूर्ति-बाजार में घूमते-घूमते ये लोग प्रायः निराश हो चुके थे। एक दिन जब ये लोग 'भिण्डो का रास्ता' नामक गली छोड़कर आगे बढ़ने ही वाले थे कि आपकी पत्नी ने आपको टोंका और कहा कि 'क्यों नहीं इस गली में भी देख लेते?' बिना मन ही उन लोगों ने उस छोटी-सी गली में प्रवेश किया और आश्चर्य से वे सभी अवाक् होकर दूसरी ही दूकान के सामने ठिठक कर खड़े हो गए। उस दूकान में सङ्गमर्मर की चतुर्भुजी सिंह-वाहिनी भव्य प्रतिमा विराजमान थी, जिसकी खोज में वे इतनी दूर से आये थे।

उक्त दूकान के शिल्पी पं रामरक्षपाल शर्मा ने बताया कि दो महीने पूर्व उन्हें स्वप्न हुआ कि 'एक चतुर्भजी, सिंह-वाहिनी दुर्गा की प्रतिमा बनाओ। उसे लेने के लिए शीघ्र ही कोई आएगा।' स्वप्न के अनुसार मूर्ति तो तैयार हो गई किन्तु चतुर्भुजी मूर्ति लेनेवाले कम ही लोग होते हैं। फिर स्वप्न में जैसा निर्देश किया गया था, यह मूर्ति ४½ फीट लम्बी बनाई गई थी। फलतः बिना बिकी अब तक रखी थी।

बिना किसी विशेष तर्क-वितर्क के ३५०० रुपए में प्रतिमा को प्राप्त कर सहर्ष ये लोग पटना वापस आये। रेल द्वारा सङ्गमर्मर की वह प्रतिमा ७ फरवरी, १६७७ को पटना पहुँच गई और उसी दिन उसे श्री मङ्गला गौरी के पूजा-पीठ पर विराजमान कर दिया गया। लोग यह देखकर चकित रह गये कि यद्यपि कोई नाप-जोख नहीं ली गई थी किन्तु प्रतिमा स्थान के सर्वथा अनुरूप ही निकली। बिना किसी कठिनाई के प्रतिमा पूजा-पीठ पर आरूढ़ हो गई। २१ फरवरी से शतचण्डी महा-यज्ञ प्रारम्भ हुआ और २ मार्च, १६७७ को विधिवत् 'श्रीमङ्गला गौरी मन्दिर' में वह प्रतिष्ठित हो गई। उसी दिन से प्राचीन 'मङ्गला गौरी कुआँ' भी पुनः अपने ऐतिहासिक गौरव से युक्त हो चुका है और हजारों भक्त वहाँ पहुँचकर अपने को सब प्रकार से कृतार्थ अनुभव करने लगे हैं।

'श्रीमङ्गला गौरी मन्दिर' तक पहुँचने में कोई विशेष कठिनाई नहीं होती। पटना की वासन्तिक दुर्गा-पूजा 'पक्का बारी' स्थान पर होती है। उस स्थान के कुछ ही आगे लोअर रोड है, वहाँ से भिखना पहाड़ी को बायीं ओर मुड़ना होता है। एक फर्लांग बाद ही दाहनी ओर एक पुराना मकान है, जिसमें लोहे का नया द्वार लगा है। बस, वही आपका अभीष्ट 'श्री मङ्गला गौरी मन्दिर' है।

बिहीयाँ (भोजपुर) की 'महथिन देवी'

बिहार के भोजपुर जिले में बिहीयाँ नामक एक कस्बा है। पूर्व-रेलवे का यह एक छोटा-सा स्टेशन है। यह आरा से १६-१७ कि० मी० पश्चिम और बक्सर से ३५-४० कि० मी० पूर्व में है। स्टेशन से एक कि० मी० दूरी पर पूर्व में 'महथिन देवी' का रमणीक मन्दिर एकान्त वातावरण में स्थित हैं। बिहार के प्रसिद्ध देवी-स्थानों में इसका अपना विशिष्ट स्थान है।

यद्यपि मन्दिर प्राचीन और ऐतिहासिक है, तथापि इसका इतिहास अस्पष्ट ही है। परम्परागत तथ्यों के द्वारा ही इसका कुछ अनुमान किया जा सकता है।

बिहीयाँ के अतीत-कालीन एक राजा रणपाल अत्यन्त दुराचारी, अत्याचारी एवं शोषक थे। उनके विरुद्ध एक ब्राह्मण कन्या ने विद्रोह किया और चित्तौड़ की महारानी पद्मिनी के समान दुर्दान्त साहस का परिचय देकर अपने को स्वाहा कर जन-मानस में चेतना का संचार कर दिया, उसी के स्मारक के रूप में लोगों ने एक मन्दिर बना दिया, जिससे भविष्य में लोग यहाँ से शिक्षा लेकर एवं उस अतीत का स्मरण कर उत्पीड़नों और अत्याचारों का उन्मूलन करने में सफल हो सकें। तब से पड़ोस के क्षेत्रों की सभी नव-विवाहिता स्त्रियाँ इस पवित्र स्थल पर अवश्य आती हैं और उस कन्या की देवी-रूप में पूजा करती हैं। आज भी वह 'सुहाग देवी' के रूप में प्रसिद्ध हैं। प्रत्येक विवाहिता कन्या अपने सुहाग की रक्षा के लिए साड़ी चढ़ाने आती हैं। वास्तव में यह मन्दिर एक जाज्वल्यमान मशाल के समान है—असीम साहस, शौर्य, बलिदान, त्याग, समर्पण और उत्साह की।

मन्दिर का आज जो बाह्य स्वरूप है, वह लगभग १५० वर्ष पुराना है। जब रेलवे लाइन बिछ रही थी, तो इसी स्थल से होकर लाइन को लगाना था। अतः दिन में जब लाइन बिछा दी जाती, तो वह स्वतः उखड़ कर दूर हट जाती। जो अंग्रेज अधिकारी लाइन बिछवा रहा था, उसकी आँखें खराब होने तक की स्थिति आ गई। भारत की रहस्यमयी देवियों एवं घटनाओं का उसे स्मरण हो आया और उसने लाइन को वहाँ से हटाकर अलग बिछाने का आदेश दे दिया। यह मुड़ी हुई रेलवे लाइन आज भी देखी जा सकती है। उसी अंग्रेज ने चर्चिल और फॉक्स नामक दो अन्य अंग्रेज अधिकारियों के सहयोग से मन्दिर का निर्माण कराया।

मन्दिर के निरीक्षण से ज्ञात होता है कि पूजा-स्थल पर चार पूजा-केन्द्र बने हैं—दो मध्य में और दो अगल-बगल। किंवदन्ती है कि ब्राह्मण-कन्याएँ दो थीं और दो उनकी सेविकाएँ थीं। अतः कन्यायें मध्य में हैं एवं सेविकायें अगल-बगल में। मन्दिर का नाम भी दो प्रकार से लिया जाता है—१ महथिन माई, २ महथिन दाई। 'दाई'-शब्द उक्त किंवदन्ती की पुष्टि करता है। 'महतिन' का अपभ्रन्श होकर 'महथिन' शब्द बना है। 'महतिन' अर्थात् महतो (कुशवाहा) की लड़की। इस मत के अनुसार कन्या 'कोइरी' जाति की थी। कुछ लोग 'महथिन' को ही कन्या का मूल नाम मानते हैं। चाहे जो हो, 'महथिन माई' की महिमा का प्रभाव पड़ोस के क्षेत्रों में सर्व-मान्य रहा है, जो आज भी विद्यमान है।

राँची के मुख्य देवी-मन्दिर

१. श्रीछिन्नमस्ता-मन्दिर--छोटा नागपुर के हजारीबाग जिले में, 'रामगढ़-छावनी' से लगभग ३० किलोमीटर दूर 'रजरप्पा मन्दिर' है। यहाँ 'मां छिन्नमस्ता' का एक प्राचीनतम मन्दिर है। यह पवित्र-स्थल 'मेधा-ऋषि' के आश्रम एवं 'सुरथ और समाधि' की तपःस्थली के रूप में भी प्रसिद्ध है। यह दामोदर एवं भैरवी नदी के सङ्गम पर स्थित है, जो अभी भी पहाड़ों एवं जङ्गलों में घिरा हुआ है। माँ भगवती के परम भक्त एवं 'चण्डी' मासिक पत्रिका के आजीवन सदस्य श्री विपिनबिहारी शरण, कार्यपालक अभियन्ता द्वारा यह स्थल आज बिहार का स्वर्ग बन गया है।

वर्तमान में यहाँ एक प्राचीनतम--'माँ छिन्नमस्ता' का मन्दिर है। इसके अतिरिक्त 'मां श्यामा' का एक नव-निर्मित मन्दिर है। आठ महा-विद्याओं--मां कमला, मां बगला, मां भैरवी, मां षोडशी, मां तारा, मां धूमावती, मां भुवनेश्वरी, मां मातङ्गी के नवीन मन्दिर निर्मित हुए हैं। दसों महा-विद्याओं की आकर्षक एवं ध्यान-सम्मत प्रतिमायें यहाँ विधि-वत् प्रतिष्ठित हैं। इनके अतिरिक्त 'भगवान् काल-भैरव' और 'भगवान् हनुमान' के भी मन्दिर हैं। नदी-सङ्गम पर एक 'तान्त्रिक-घाट' भी है। कोणार्क सूर्य-मन्दिर की भाँति यहाँ एक 'सूर्य-मन्दिर' का निर्माण भी हुआ है।

यहाँ जाने के लिए हजारीबाग एवं राँची से बस-सेवायें उपलब्ध हैं। रामगढ़-छावनी से ६ बजे प्रातःकाल से ८ बजे रात्रि तक ट्रेकर, जोप इत्यादि उपलब्ध रहते हैं। यात्रियों के रहने के लिए यहाँ विश्रामागार भी उपलब्ध हैं। बिहार सरकार की ओर से सुन्दर सड़क-मार्ग का निर्माण हुआ है, जिससे कार द्वारा भी जा सकते हैं।

यहाँ प्रतिदिन हजारों भक्त दर्शनार्थ-पूजनार्थ आते हैं। पर्व-तिथियों में साधकों द्वारा सविधि-पूजन व हवन इत्यादि भो सम्पन्न होते हैं। कतिपय 'हवन-कुण्ड' भी उपलब्ध हैं। भक्तों की सभी मनोकामनायें यहाँ पूर्ण होती हैं। 'माँ छिन्नमस्ता' के पवित्र स्थल पर पहुँचते ही अपूर्व सिद्ध-पीठस्थ शान्ति का अनुभव होता है।

२. नार का श्री तारा-मन्दिर--यह मन्दिर दक्षिणी छोटा नागपुर के पलामू जिले में, चन्दवा-बालूमाथ सड़क पर, चन्दवा प्रखण्ड से १० किलोमीटर दूर पक्की सड़क के बगल में एक किलोमीटर पक्की उप-सड़क से जुड़ा है। यह 'मां तारा' का प्राचीन मन्दिर है, जो 'नार' ग्राम में अवस्थित होने के कारण—'नार की तारा देवी' के नाम से प्रसिद्ध है। इसका निर्माण-काल लगभग १५०० ई० माना जाता है। यह सम्पूर्ण स्थल पहाड़ों और जङ्गलों से घिरा हुआ है। यहां 'माँ उग्रतारा' की श्वेत पत्थर की मुष्टिका-प्रमाण (चार अंगुल) की प्राचीन प्रतिमा है। समीप में उसी आकार की 'भ० महा-लक्ष्मी' की भी श्वेत प्रतिमा है।

यहाँ भाद्र-मास छोड़कर प्रतिदिन 'छाग-बलि' होती है। शारदीय नवरात्रि में यहाँ 'महिष-बलि' भी होती है। यहाँ प्रतिदिन कुमारियों द्वारा देव्यपराध क्षमापण-स्तोत्र का पाठ श्रवण-योग्य होता है। इस मन्दिर में प्रसाद के रूप में केवल मिश्री, नारियल, सिन्दूर एवं कपूर स्वीकार किया जाता है। यहाँ धूप-बत्ती का प्रयोग नहीं होता, केवल गुग्गुल का ही धूप दिया जाता है। यहाँ भोज-पत्र पर लिखी एक बहुत ही प्राचीन पूजा-पद्धति है, जिससे नवरात्रि में पूजन होता है। इसके कुछ पृष्ठ नष्ट होने पर स्वनिर्मित स्याही से पुनः लिखे गए हैं।

३. श्रीदुर्गा-मन्दिर--राँची-जिलान्तर्गत राँची-टाटानगर राष्ट्रीय-पथ पर तमाड-प्रखण्ड से लगभग पाँच किलोमीटर पर देवरी का प्राचीनतम 'दुर्गा-मन्दिर' है। मन्दिर एवं प्रतिमा के दर्शन से प्राचीनता की स्पष्ट झलक प्रतीत होती है। यहाँ श्री दुर्गा 'अष्ट-भुजा' हैं। मन्दिर के निर्माण-अवधि की सूचना प्राप्त नहीं है। मुख्य सड़क पर 'देवरी का प्राचीनतम दुर्गा-मन्दिर' का बोर्ड लगा हुआ है।

एक किंवदन्ती के अनुसार अंग्रेजों द्वारा इस मन्दिर को तोप से उड़ाने का प्रयास किया गया था, किन्तु मन्दिर को उड़ानेवालों का स्थल पर ही देहान्त हो गया। मन्दिर आज भी अपनी प्राचीनता प्रदर्शित कर रहा है। यहाँ अनेकों भक्तों की मनोकामनाएँ पूरी हुई हैं। माँ दुर्गा के मन्दिर के सामने 'बलि-स्थल' है, जहाँ 'छाग-बलि' सम्पन्न होती है। मन्दिर के स्थायी पुजारी स्थानीय आदिवासी जाति के वंशज हैं, वे बड़े ही सुन्दर ढङ्ग से स्थानीय भाषा में मां की प्रार्थना करते हैं। मंगलवार के दिन यहाँ ब्राह्मण पुजारी रहते हैं। मन्दिर १० बजे रात्रि तक खुला रहता है। गर्भवती देवियों को इस स्थान पर आना अज्ञात कारणों से निषेध है।

—श्री छत्रधारीलाल दास, राँची

चम्पारण के प्रमुख देवी-स्थान

देवतात्मा हिमालय की गोद में बसा चम्पारण अपने अञ्चल में सदियों का इतिहास छिपाए बैठा है। यह वही चम्पकारण्य है जो आदि-कवि 'वाल्मीकि' से लेकर 'नाथ-सम्प्रदाय' के प्रवर्तक ब्रह्मलीन योगि-राज 'गोरक्षनाथ' की तप-स्थली रहा है, यहाँ के कुछ प्रमुख देवी-स्थान ये हैं :—

१. श्रीवैराटी देवी--कभी राजा 'विराट' की यहाँ राजधानी थी। उनकी उपासिता देवी 'श्री वैराटी' हैं। घन-घोर जङ्गलों के बीच थारु और ऊराँव जन-जाति की आबादी में अवस्थित यह मन्दिर आजकल चौहान क्षत्रियों की देख-रेख में है। 'चैत्र-नवरात्र' में विशेष मेला लगता है और देवी को रोट चढ़ता है। यहाँ 'बलि-प्रथा' का प्रचलन विशेष रूप से है।

२. श्रीचण्डी-स्थान--अरेराज से चार मील दूर, यह मन्दिर अब खण्डहर-रूप में विद्यमान है। करीब दो हजार वर्ष पहले यह एक भव्य मन्दिर रहा होगा। यहाँ अभी भी बिल्व-वृक्षों के जङ्गल हैं। इसके पार्श्व में दीघा में प्रति नवरात्र मेला लगता है। वैसे यहाँ अरेराज में 'श्री सोमेश्वर महादेव' का मन्दिर भी जाग्रत-पीठ है।

३. श्रीसहोदरा स्थान—बेतिया में बगहा के बस-मार्ग पर, जामनियाँ ब्लाक में ठोढ़ी पहाड़ी के पार्श्व में 'श्रीसहोदरा देवी' का प्राचीन मन्दिर है, मूर्त्ति बहुत ही प्राचीन लगती है, जो किसी शिला-खण्ड को तराश कर बनायी गई है। सामने ही 'पीठ' है, जहाँ विधिवत् बलि होती है। प्रति-वर्ष चैत्र-नवरात्र में विशाल मेला भी लगता है। मन्दिर के निकट कई गुप्त सुरङ्गें हैं। एक पत्थर पर किसी के चरण उत्कीर्ण हैं। इसके बारे में बहुत सी लोक-कथाएँ प्रचलित हैं। सत्यान्वेषण की आवश्यकता है। नेपाल से सामीप्य होने के कारण यहाँ बहुत ही प्राचीन रहस्यों के छिपे होने की सम्भावना है।

--श्री रामनन्दनप्रसाद, डेढ़गाँव, रोहतास

दीघवारा का सिद्ध–'श्रीअम्बिका पीठ'

श्री पं० जयमङ्गल दुबे, ठीकहा, वैशाली (बिहार)

बिहार के सारण (छपरा) जिलान्तर्गत उ० पू० रेलवे स्टेशन रामावतारनगर और दीघवारा के बीच में आर्मी नामक एक ग्राम है, जो गंगा-तट पर बसा हुआ है। इसी गाँव में गंगा के किनारे श्री अम्बिका-भवानी का भव्य मन्दिर है। मन्दिर पर्याप्त ऊँचाई पर निर्मित है और बहुत पुराना है। मन्दिर में कोई प्रतिमा नहीं है बल्कि मिट्टी का एक ऊँचा पीठ है, जिसमें नौ पिण्ड बने हैं, जो नव-दुर्गा के प्रतीक हैं। यह एक सिद्धि-दात्री शक्ति-पीठ है। इस मन्दिर में मन्त्र-यन्त्र की सिद्धि के इच्छुक भक्त साधक आते ही रहते हैं और मन्दिर में अपनी साधनार्चना कर अल्पावधि में ही अपना मनोरथ पूर्ण कर लेते हैं। इस मन्दिर में ब्रह्मीभूत करपात्री जी ने भी नवरात्र-पारायण किया था।

शारदीय और वासन्तीय नवरात्र धूमधाम से यहाँ होता है। इस अवसर पर अब यहाँ मेला लगने लगा है। उल्लेखनीय है कि यह मेला मात्र पूजा-पाठ का ही रहता है। बिना किसी खेल-तमाशे के, मात्र पूजा-पाठ और मनौती उतारनेवाले लोगों से ही परम सुहावना मेला जैसा दृश्य उपस्थित होता है, जो श्री भवानी की दयार्द्रता का जीता-जागता उदाहरण है। 'श्री चण्डी' (दुर्गा-सप्तशती) का पाठ तो बहुतेरे साधक निरन्तर करते रहते हैं और बहुत से भक्त आते-जाते रहते हैं। इस प्रकार नवरात्र में नौ दिनों तक दूर-दूर के लोग आकर पूजा-पाठ, कुमारी-भोजन, बटुक-भोजन इत्यादि करते हैं। माँ का दरबार सबके लिए समान-रूप से खुला रहता है। इसमें कोई भी भेद-भाव नहीं है। सभी लोग अपनी परम्परा और विधि के अनुसार पूजा कर सकते हैं। इसमें कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

इस मन्दिर के सम्बन्ध में एक जन-श्रुति है कि दक्ष प्रजापति का यज्ञ इसी स्थान पर हुआ था, जिसमें सती ने आत्म-दाह किया था। आज के दीघवारा को वहाँ के पण्डित 'दीर्घ-द्वार' का अपभ्रन्श बताते हैं और कहते हैं कि वहाँ 'दीर्घ-द्वार' था। 'श्री चण्डी' के त्रयोदश अध्याय के श्लोक ९ एवं १० का उल्लेख करते हुए पण्डित यह भी कहते हैं कि मेधा ऋषि से जगदम्बा के पूजनादि की शिक्षा ग्रहण कर राजा सुरथ और समाधि वैश्य ने इसी स्थान पर यज्ञ-कुण्ड की भस्म और गंगा की मृत्तिका को मिलाकर नवदुर्गा की स्थापना की तथा तीन वर्षों तक साधनोपासना कर श्री अम्बिका का साक्षात्कार किया तथा मनोभिलषित वरदान प्राप्त किया।

पीठ के नीचे एक शिव-लिङ्ग है, जिससे लगा हुआ एक निकास है, जिससे जल शिव-लिङ्ग पर चढ़ाया हुआ प्रवाहित होता है। वह जल दूसरे छोर पर एक चतुष्कोण कुण्ड में गिरता है। इसे वहाँ के लोग तथा-कथित यज्ञ-कुण्ड बताते हैं। यह कुण्ड कभी नहीं भरता है, चाहे जितना भी जल चढ़ाया जाय। सुना जाता है कि इसे भरने का असफल प्रयास बेतिया महाराज द्वारा किया गया था, जिसका भयंकर दुष्परिणाम भी हुआ था।

निःसन्देह यह एक आशु सिद्धि-दाता शक्ति-पीठ है। माँ का दरबार फौजदारी कोर्ट कहा जाता है। सच्चे मन-प्राण से रात में निवेदन करने पर उसी रात में ही निर्णय प्राप्त हो जाता है, यह बहुतों का निजी अनुभव है। फौजदारी कोर्ट में भी इतने शीघ्र निर्णय नहीं होता है। ऐसी दया-मयी हैं श्री अम्बिका भवानी, जो दीन-दुखियों एवं भक्तों पर सदैव दया करती हैं।

इस स्थान के साधक मणिपुर-वासी श्री गिरधारी दुबे जी अपने हाथों श्री भवानी को लँहगा अर्पित करते थे और माँ स्वयं उनके हाथ से लेकर पहन लेती थीं और तब किवाड़ स्वतः खुल जाता था। इसके बाद पुजारी-गण आभूषण, पुष्प-माल्यादि से शृंगार करते थे। उसके बाद से ही अब पीठ में लँहगा पहनाया जाने लगा है। अभी तक माँ का कोई वैसा दूसरा लाड़ला नहीं हुआ।

इसी स्थान के साधक श्री योगा बाबा थे, जिनकी धोती आकाश में ही सूखती थी। इस स्थान के साधक श्री जगमणि दुबे जी थे, जिन्होंने मन्दिर में ही समाधिस्थ अवस्था में ब्रह्माण्ड-भेदन कर ब्रह्म-लोक गमन किया। उनकी धर्म-भार्या उनके पार्थिव शरीर के साथ स्व-गात्रोत्पन्न अग्नि में भस्म होकर सती हो गयीं। यह स्थान उनके ग्राम दातापुर (मुजफ्फरपुर) में सती-स्थान के नाम से प्रसिद्ध है तथा सभी माङ्गलिक अवसरों पर इनकी पूजा की जाती है।

रोहतास के प्राचीन मन्दिर

श्री रामनन्दनप्रसाद, डेढ़गाँव, रोहतास

प्राचीन मगध और कोशल के क्रोड़ में बसा हुआ रोहतास जनपद अनादि-काल से 'शाक्तो-पासना' का केन्द्र रहा है। अभी भी 'चैता-गायन' और 'योगिनी-नृत्य' उस प्राचीन युग की याद दिलाते हैं, जब 'तन्त्राचार' यहाँ का मुख्य धर्म था। वैसे कुछ वर्षों पहले इसका नाम शाहाबाद था, जिसका मुख्य नगर आरा 'आरण्य' का अपभ्रन्श है। समूचे जनपद की शासिका 'आरण्य देवी' आरा में हैं, जिनका वर्णन 'चण्डी' के पृष्ठों में बहुत पहले निकल चुका है। रोहतास के मुख्य मन्दिर ये हैं—

१. भलनी की 'श्री यक्षिणी देवी'—पुराने शाहाबाद और रोहतास में ये घर-घर पूज्या हैं। विक्रमगञ्ज से बस द्वारा नटवार जाने पर, वहाँ से एक मील की दूरी पर यह मन्दिर है। मन्दिर के गुम्बज पर दो शेरों की मूर्तियाँ विराजमान हैं। नीचे माँ की भव्य प्रतिमा है। इस पीठ का पूजा-कार्य, यहाँ के शाकल-द्वीपीय ब्राह्मणों द्वारा सञ्चालित होता है।

'चैत्र नवरात्र' के बाद यहाँ विशाल मेला लगता है। पहले बलि-प्रथा भी थी लेकिन इधर 'आर्य-समाज' के प्रभाव से बन्द है। इसका प्राचीन इतिहास विस्मृति के गर्भ में है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि यह मन्दिर 'हर्ष-युग' का है, जब इसके किनारे से सदा-नीरा 'शोण-भद्र नद' बहता था। इसके भौगोलिक प्रमाण दिए जा सकते हैं। समीप ही स्थित 'परशुराम-कुण्ड' और सहसराम से 'परशु-राम' और 'सहस्र-बाहु' के पौराणिक युद्ध से भी इसका सम्बन्ध जोड़ा जाता है।

२. भगवती श्रीतारा चण्डी—सासाराम (रोहतास का मुख्यालय) से थोड़ी ही दूर पर 'कैमूर पहाड़ी' के नीचे, चट्टानों से निर्मित 'भगवती तारा' का मन्दिर देखने योग्य है। मूर्ति का केवल सिर-वाला खण्ड है। मुखौटा सुवर्णाच्छादित है।

३. श्रीमुण्डेश्वरी देवी, उमापुर—भगुआ से चल कर भगवान आने पर, कैमूर-श्रेणी में ही ऊपर पहाड़ी पर 'श्री मुण्डेश्वरी देवी' की प्रभाव-शालिनी प्रतिमा है। राजकीय अभिलेखों के अनुसार यह प्रतिमा 'गुप्त-काल' की है और गुप्त आभिजात्य-काल का उत्कृष्ट नमूना है। विश्वास किया जाता है कि भगवती ने 'मुण्ड-बध' यहीं किया था। पहाड़ी के पार्श्व में 'भैरव', 'गणेश', 'पञ्चमुखी शिव' इत्यादि की भी मूर्त्तियाँ हैं। यहाँ दर्शनार्थी एवं भक्तों का मेला लगा रहता है।

श्री 'चण्डी-स्थान' विराटपुर

श्री पं० अमरनाथ झा, विराटपुर, सहरसा (बिहार)

बिहार प्रदेश में उत्तर पूर्व रेलवे की एक लाइन 'बरौनी' से 'कटिहार' गई है। उस लाइन पर अवस्थित 'सहरसा' स्टेशन से २५ मील दक्षिण यह प्रसिद्ध तीर्थ-स्थल है। 'सहरसा' से 'सोन-वर्षा' तक बस, जीप आदि सवारियाँ मिलती हैं। 'सोनबरसा' से श्रीचण्डी-स्थान तक पक्की सड़क बनी है। रिक्शा, टमटम आदि सवारी मिलती है। वहाँ से श्रीचण्डी-स्थान 'विराटपुर' की दूरी चार मील है। 'सोन-वर्षा' से यह स्थान उत्तर-पूर्व में पड़ता है।

विराटपुर-स्थित मातेश्वरी चण्डी का मन्दिर सम्पूर्ण भारत में शक्ति के [विशालतम मन्दिरों में से एक है। यह स्थान ५१ सिद्ध-पीठों में एक है।

तन्त्र-शास्त्र के अनुसार माता सती की आँख 'महिषी' की आदि-शक्ति माँ तारा हैं। वहीं सती की आँख गिरी थी। हाथ कात्यायनी हैं एवं गर्दन से नीचे का भाग 'विराटपुर' स्थित आदि-शक्ति माँ चण्डी हैं। ये तीनों स्थान एक दूसरे से समान दूरी पर त्रिकोणात्मक रूप में स्थित हैं।

विराटपुर की भगवती छिन्नमस्ता हैं। त्रेता-युग में महर्षि वशिष्ठ ने यहाँ माँ चण्डी की प्रतिमा प्रतिष्ठित की थी। सबसे पहले ये इन्हीं के द्वारा पूजित हुई थीं। महाभारत-कालीन राजा विराट की भी ये पूज्या थीं। राजा विराट की राजधानी विराटपुर में ही थी। राजा विराट के सिंह-दरवाजे पर माँ चण्डी की प्रतिमा स्थापित है। राजा विराट नित्य-प्रति माँ चण्डी की पूजा किया करते थे। माँ चण्डी के मन्दिर से सटे पश्चिम श्री राजा विराट का राज-भवन था। वर्तमान समय में भी यह स्थान समतल भूमि से काफी ऊँचा है।

पहले यह धार्मिक स्थान जंगलों से भरा हुआ था। यहाँ के निवासी गाय चराने के लिए जंगल में आया करते थे। कहा जाता है कि बाछी के स्तन से निकलती दूध की धारा भगवती की प्रतिमा पर गिरती थी। संयोग-वश एक दिन गाय चरानेवाले एक चरवाहे ने इस अद्‌भुत दृश्य को देखा और गाँव में जाकर उक्त घटना को व्यक्त किया। ग्रामवासियों ने जाकर प्रत्यक्ष इस दृश्य को देखा, तो आश्चर्य-चकित हो गये। गाँववालों ने उक्त स्थल की खुदाई की, तो माँ चण्डी की प्रतिमा दिखाई दी। इसके बाद तुरन्त ही उस स्थान की सफाई की गई। उसी दिन से माँ चण्डी की पूजा विधिवत् होती चली आ रही है।

आरम्भ में माँ चण्डी की प्रतिमा खुले आकाश में थी। 'जलसीमा' निवासी राजा प्राणसिंह की दूसरी रानी चमेली कुँवरी के अनुरोध से बनगाँव-निवासी योगिराज स्वामी लक्ष्मीनाथ जी गोसाईं ने तीन दिनों तक माँ चण्डी की प्रतिमा के समक्ष मन्दिर-निर्माण की अनुमति हेतु तप किया और माँ चण्डी ने अन्त में उन्हें अनुमति दे दी। इस प्रकार रानी के खर्च से एवं स्वामी जी की देख-रेख में मन्दिर-निर्माण का कार्य आरम्भ हो गया। मन्दिर के बनने में लगभग दस वर्ष का समय लगा, तब कहीं जाकर ५२ हाथ ऊँचे इस विशाल मन्दिर का निर्माण पूरा हुआ। बीस हाथ की ऊँचाई पर मन्दिर के चारों तरफ आठ मन्दिर-स्तूप भी निर्मित हैं, जो माँ नव-दुर्गा के प्रतीक हैं।

मन्दिर के भीतर माँ चण्डी की प्रतिमा के अतिरिक्त माँ गहिल, माँ अष्टभुजी दुर्गा, माँ महिष-मर्दिनी एवं माँ काली की प्रतिमाएँ हैं। मां चण्डी की प्रतिमा छिन्नमस्ता हैं और चांदी की बनी हुई हैं। यह चाँदी की प्रतिमा महाराजाधिराज शिवसिंह दरभंगा-नरेश की दी हुई है।

सबसे विचित्र बात यह है कि मां चण्डी की प्रतिमा के बगल में एक छोटा-सा जल-कुण्ड है, जिसका निकास बाहर की ओर नहीं है। भगवती को कितना ही जल क्यों न चढ़ाया जाय, फिर भी कुण्ड का जो जल-स्तर है, उतना ही बना रहता है। कहते हैं कि मां चण्डी को चढ़ाया हुआ जल गुप्त मार्ग से तारा एवं मां कात्यायनी तक पहुँच जाता है। इस प्रकार यहाँ पूजा करने से तारा एवं कात्यायनी स्थान की भगवती की पूजा का फल भी भक्त-जनों को प्राप्त हो जाता है।

चण्डी-मन्दिर के अगले भाग में मां चण्डी का सिंहासन है, जो काले पत्थर का है। इसके ऊपर लकड़ी की एक छोटी चौकी है, मां चण्डी की पूजा के पश्चात् इसी सिंहासन की पूजा पहले की जाती है। इसके बाद ही अन्य बाहरी देवी-देवताओं की पूजा होती है।

मन्दिर के सन्निकट दक्षिण तरफ एक तालाब है। इस तालाब को 'जीवध कुण्ड' कहते हैं। ऐसा माना जाता है कि यह कुण्ड राक्षसों द्वारा खोदा हुआ है। भक्त-जन मां चण्डी की पूजा इसी कुण्ड के जल से करते हैं। जो निस्सन्तान स्त्रियाँ इस कुण्ड में स्नान कर मां के पुजारी से आदेश-पुष्प लेकर मां की पूजा करती हैं, उन्हें अवश्य ही पुत्र-लाभ होता है।

मां चण्डी की पूजा हेतु एक ब्राह्मण पुजारी जी हैं, जो सुबह-शाम माँ की पूजा एवं आरती करते हैं। इसके लिये उन्हें ११ बीघे जमीन रानी की तरफ से प्राप्त है।

मां चण्डी के प्रांगण में मंगलवार को मेला लगता है। इस दिन मां चण्डी की विशेष पूजा होती है। शारदोय नवरात्र (दशहरा) के अवसर पर चण्डी-स्थान में विशेष मेले का आयोजन होता है।

***

मुंगेर का 'श्रीचण्डी'-मन्दिर

पं० जयमङ्गल दुबे, ग्रा० ठीकहा, पो० माधोपुर द्वारा बालुकाराम, वैशाली (बिहार)

बिहार के जिला-मुख्यालय, मुंगेर से बीस किलोमीटर की दूरी पर गंगा-तट पर 'श्रीचण्डी'-मन्दिर स्थित है और 'चण्डी-स्थान' के नाम से विख्यात है। मन्दिर एक पहाड़ी की कन्दरा में है, जिसका रूप अधोमुख कटाह (कड़ाही) के समान है। इसमें श्री चण्डी के बाँयें नेत्र की प्रतिमा है, जिसकी पूजार्चना होती है। इसके सम्बन्ध में स्थानीय जनता में यह मान्यता है कि सती का बायाँ नेत्र इस पहाड़ी पर गिरा। पहाड़ी में नेत्र की प्रतिमा स्वतः निर्मित है। यह स्थान सर्वथा गुप्त था। इसकी जानकारी जन-साधारण को नहीं थी। साधना के फलस्वरूप केवल तत्कालीन राजा कर्ण को इसका ज्ञान था। वे प्रतिदिन निशार्चन कर श्री चण्डी से सवा मन स्वर्ण प्राप्त करते थे और उसे दान कर देते थे।

वर्तमान मुंगेर तत्कालीन अङ्ग-राज्य की राजधानी थी। राजा कर्ण प्रतिदिन एक वृक्ष के मूल में निर्मित एक चबूतरे पर बैठकर दीन-दुखियों, भिक्षुकों को मुक्त हस्त से दान दिया करते थे। यह स्थान 'कर्ण-चौरा' के नाम से आज भी विख्यात है तथा अभी तक वह वृक्ष है, जिसकी एक टहनी हिलाने से पूरा वृक्ष कम्पित हो उठता था। उस वृक्ष के मूल में निर्मित चक्षु-तारा का ध्वंसावशेष था।

इस स्थान से थोड़ी ही दूर पर भयावह श्मशान है। पहले यह स्थान बिलकुल जन-शून्य था, परन्तु इन दिनों मन्दिर के पास कुछ बस्ती हो गई है। कुछ वर्ष पूर्व तक गुफा में आरती-पूजन झुककर ही किया जाता था क्योंकि उसकी ऊँचाई कम थी। वर्तमान समय में इसका जीर्णोद्धार कर मन्दिर को नया रूप प्रदान किया गया है। अब उसमें खड़े होने में तथा पूजादि करने में कोई असुविधा नहीं है।

मधुबनी के प्रसिद्ध देवी-मन्दिर

१. श्रीदुर्गा-स्थान—यह मन्दिर मधुबनी जिले के 'बेनी पट्टी'-अनुमण्डल के समीप है। यहाँ भगवती दुर्गा की मूर्ति है। यहीं महान् कवि कालिदास को दुर्गा ने वरदान दिया था।

सुन्दरनगर, उच्चैट में भगवती की प्रतिमा अति प्राचीन काल से विराजमान है। कहते हैं कि यहाँ एक 'गुरु-आश्रम' स्थापित था, जिसमें महा-कवि कालिदास शिष्य के रूप में थे। सन्ध्या समय आश्रम के गुरु जी प्रतिदिन एक शिष्य को मन्दिर में 'दीप' जलाने हेतु भेजते थे। एक बार शिष्यों ने गुरु जी से 'दीप' जलाने के लिए 'कालिदास' को भेजने का निवेदन किया। गुरु का आदेश पाकर कालिदास मन्दिर गए। उन्होंने 'दीप' को जलाया और प्रमाण-स्वरूप जलते हुए 'दीप' की लौ एवं धूप-दानी की राख दोनों हाथों में लगाकर जगदम्बा की मूर्त्ति पर लगा दिया। माँ अति प्रसन्न होकर प्रकट हो गयीं। माँ ने वरदान माँगने के लिए कहा। कालिदास ने 'विद्या-प्राप्ति' का वर माँगा।

इस किंवदन्ती के आधार पर आज भी 'यज्ञोपवीत-संस्कार' के बाद, इस क्षेत्र के लोग अपने बच्चों को भगवती दुर्गा का दर्शन कराते हैं, जिससे महा-कवि कालिदास की प्रतिभा अपने बच्चों को प्राप्त हो सके।

२. श्रीभद्रकाली मन्दिर—यह सिद्ध प्राचीन मन्दिर मधुबनी जिले के 'कोईलखा' ग्राम में अवस्थित है। राजबनैली-गढ़ की रानी स्व० चन्द्रावती द्वारा इस मन्दिर का पुनर्निर्माण हुआ है।

३. श्रीदुर्गा-शक्ति-पीठ—यह 'दुर्गा-मन्दिर' मधुबनी जिले के झंझारपुर अनुमण्डल में **घोघरडीहा** में है। यहाँ पिछले ७० वर्षों से लगातार सामूहिक 'नवरात्र-पूजा' का आयोजन हो रहा है।

४. श्रीमाई-स्थान—यह मन्दिर झंझारपुर, पूर्वोत्तर रेल्वे के लौकता लाइन में 'वाचस्पति स्टेशन' से १/२ कि० मी दक्षिण-पूर्व ढाढ़ी ग्राम में अवस्थित है। यह स्थान विश्व-विख्यात स्व० पं० वाचस्पति मिश्र का जन्म-स्थान भी है। यहाँ पर अनेक उच्च-कोटि के साधक हो चुके हैं।

५. श्रीदुर्गा-मन्दिर—यह मन्दिर मधुबनी से ढाई कि० मी० दूर उत्तर **मंगरौनी** में स्थित है। यहीं सिद्ध शाक्त-साधक पं० मदन उपाध्याय का जन्म हुआ था। यह स्थान जाग्रत् शक्ति-पीठ है। हाल ही इस स्थान के सञ्चालन-कर्ता पं० मुनेश्वर झा प्रसिद्ध तान्त्रिक हुए। इस मन्दिर के समीप में अनेक भगवती-मन्दिर हैं।

६. भगवती शाकम्भरी—यह मन्दिर झंझारपुर-लौकहा रेल्वे लाइन में 'वाचस्पति स्टेशन' से ५ कि० मी० उत्तर **मिसरौलिया** में स्थित है। यहाँ भगवती की प्राचीन व दुर्लभ मूर्त्ति है।

७. भगवती राज-राजेश्वरी—मधुबनी शहर से १० कि० मी० उत्तर डोकहर में भगवती राज-राजेश्वरी का सुन्दर मन्दिर अवस्थित है।

८. सिद्ध-काली-पीठ—यह मन्दिर मधुबनी मुख्य शहर से ५ कि० मी० उत्तर, 'जितवारपुर' के पास **हरिनगर** में है। यहाँ कुछ अन्य मन्दिर भी हैं। इस मन्दिर के पृष्ठ भाग में, लिङ्ग-रूप में, भगवान् भैरव का स्थान है, जो अन्यत्र दुर्लभ है।

९. श्रीकाली मन्दिर—राज दरभङ्गा अधीन यह मन्दिर **भौआड़ा** में मधुबनी 'पुलिस लाइन' के निकट है।

१०. श्रीकाली मन्दिर—राज दरभङ्गा अधीन यह मन्दिर मधुबनी के मुख्य शहर में रेल्वे-स्टेशन के निकट है।

११. श्रीकाली मन्दिर—यह मन्दिर मधुबनी जिले के अन्तर्गत 'जयनगर' रेल्वे स्टेशन से २१ कि० मी० दूर पूर्व-उत्तर दिशा में नेपाल-सीमा के समीप **लदनिया** में है।

१२. श्रीकाली मन्दिर—यह मधुबनी से लगभग १० कि० मी० दूर पश्चिम **सतलखा** में है।

१३. श्रीतारा मन्दिर—यह मन्दिर झंझारपुर—लौकहा रेल्वे-लाइन के 'खुटौना' स्टेशन से पश्चिम ७-८ कि० मी० दूरी पर **खोजपुर** में है। आज से लगभग तीस-चालीस वर्ष पूर्व यहाँ भगवती तारा की मूर्त्ति स्थापित की गई। यह मधुबनी जिला के 'बाबू-बरही' प्रखण्डान्तर्गत है।

सहरसा के प्रसिद्ध शक्ति-पीठ

१. भगवती उग्रतारा मन्दिर—यह मन्दिर बिहार प्रदेश के सहरसा जिले से १४ कि० मी० पश्चिम महिषी ग्राम में अवस्थित है, जो 'धर्म-मूला नदी' के किनारे स्थित है। वर्तमान मन्दिर लगभग ४०० वर्ष प्राचीन है। इसके पूर्व का इतिहास उपलब्ध नहीं है। यहाँ वशिष्ठ-आराधिता 'भगवती तारा' की सुन्दर मूर्ति है। यह मूर्ति पत्थर से निर्मित है। कमल-पुष्प की नाल भी पत्थर की है।

इस मन्दिर के समीप जगत्-विख्यात पण्डित-राज 'मण्डन-मिश्र' का पुण्य-स्थान है। यहाँ पर 'भारती संस्कृत महा-विद्यालय' भी है। आदि शङ्कराचार्य का मण्डन मिश्र से प्रसिद्ध शास्त्रार्थ यहीं पर हुआ था।

वर्तमान काल में भी यह सिद्ध-स्थान अनेक साधकों की जन्म-स्थली रहा है। यहाँ अनेक साधक श्रीतारा-भक्त रहे हैं। यथा—स्व० पं० वेणीपति मिश्र, स्व० कालिकानन्द ठाकुर, मधुबनी-नरेश स्व० श्री १०८ पूज्य राजा दुर्गादत्त जी सिंह तथा उनके पौत्र स्व० श्री तारानन्द जी, कौलावधूत स्व० सुधाकर जी ठाकुर। 'चण्डी' के प्रसिद्ध लेखक व विद्वान् स्व० तत्त्वचन्द्र बाबा जयानन्द झा भी यहीं के थे।

२. भगवती चण्डिका मन्दिर—भगवती का यह विशाल मन्दिर सहरसा से लगभग २० कि०मी० पूर्व **विराटपुर** में स्थित है। इस मन्दिर में बीसा यन्त्र नीले प्रस्तर पर अंकित है। यहाँ अनेक सिद्ध साधकों का आविर्भाव हुआ है, जिनमें स्व० परमहंस लक्ष्मीनाथ गोसाईं और साधक-प्रवर पं० जय-कृष्ण मिश्र प्रमुख हैं। इन दोनों साधकों की विभूति अकथनीय है।

३. भगवती कात्यायनी का मन्दिर—यह मन्दिर 'सहरसा-मानसी' रेल-मार्ग पर 'बदलाघाट' स्टेशन से १ कि० मी० दक्षिण-पूर्व में 'वागमती नदी' के उत्तर-तट पर स्थित है। यह शक्ति-पीठ अत्यन्त प्राचीन व उग्र है।

४. श्रीकङ्काली-मन्दिर—सहरसा से १५ कि० मी० उत्तर में पंचगछिया गाँव के पूर्व में यह मन्दिर स्थित है। इस मन्दिर के पास ही 'रामठाकुर' नाम से प्रसिद्ध एक ब्रह्म-स्थल भी है।

५. दश महा-विद्या-मन्दिर (प्रथम)—यह मन्दिर सहरसा से १३ कि०मी० उत्तर में पटोरी नामक गाँव में स्थित है। पंचगछिया-रियासत के नरेशों ने इस एक ही मन्दिर में क्रम-पूर्वक दशो महा-विद्याओं की प्रतिष्ठा की, जिनकी इस क्षेत्र में बड़ी मान्यता है।

६. दश महा-विद्या मन्दिर (द्वितीय)—सहरसा-सुपौल के रेल-मार्ग पर गढ़ बरुआरी स्टेशन से १ कि० मी० पश्चिम में बरुआरी गाँव में खारदाहा नामक नदी के पश्चिमी तट पर दश महा-विद्याओं का यह दूसरा मन्दिर दर्शनीय है। बरुआरी के राज-वंश के लोग भगवती के बड़े भक्त और तन्त्र-शास्त्र के अच्छे ज्ञाता ही नहीं, उत्तम साधक भी थे। उन्हीं की देन यह मन्दिर है।

७. श्रीदुर्गा-मन्दिर—सहरसा से ८ कि० मी० पश्चिम वनगाँव के मध्य में यह भव्य और विशाल मन्दिर है। इस गाँव में लगभग ढाई हजार ब्राह्मण परिवार हैं, जो सभी मां के अनन्य भक्त हैं। इस दुर्गा-मन्दिर के प्रभाव से शारदीय नवरात्र में सविधि बलिदान-पूर्वक बड़े उत्साह से समारोह प्रति वर्ष मनाया जाता है।

८. श्रीवनदुर्गा-मन्दिर—सहरसा से १½ कि० मी० उत्तर की ओर 'देवना डीह' नाम से सवा सौ बीघे का एक पर्वताकार मिट्टी का बुर्जा (लिङ्ग) है, जिसके पूर्वी भाग में श्रीवाणेश्वर महादेव का भव्य मन्दिर है। उस मन्दिर से पश्चिम की ओर घने जङ्गल के मध्य में एक छोटे-से मन्दिर में श्रीवन-दुर्गा की भव्य प्रतिमा प्रतिष्ठित है। ग्राह (मगर) पर आसीना भगवती वनदुर्गा अपने दर्शनों से भक्तों को रोमाञ्चित कर देती हैं और उनकी सभी कामनायें पूर्ण करती हैं। यह साधकों का साधना-क्षेत्र रहा है।

दरभंगा के प्रसिद्ध देवी-स्थान

१. श्रीश्यामा-मन्दिर—स्व० महाराजाधिराज सर कामेश्वर सिंह निर्मित यह मन्दिर दरभङ्गा जंक्शन रेल्वे स्टेशन से १ कि० मी० पश्चिम, एक सुरम्य पोखरे के पार उत्तर में स्थित है। प्रस्तर-निर्मित यह मन्दिर अत्यन्त कला-पूर्ण है। पोखरे के चारों तटों पर पूर्व के प्रत्येक महाराजा के अपने-अपने इष्ट-देवता के भव्य मन्दिर हैं।

२. श्रीचामुण्डा-स्थान—दरभङ्गा-निर्मली के रेल-मार्ग पर वमौरिया स्टेशन से ५ कि० मी० दक्षिण पचही नामक गाँव से १ कि० मी० दक्षिण में यह स्थान एक महा-श्मशान में है। यहाँ न तो प्रतिमा है और न मन्दिर, किन्तु यहीं दरभङ्गा-राज-वंश-सम्भूत श्री इन्द्रपति सिंह जी ने, जो 'चण्डी' के प्रख्यात लेखक 'श्यामानन्दनाथ' के नाम से प्रसिद्ध हुए, अपनी सतत साधना की थी और शक्ति-तत्त्व के परम ज्ञानी हो गए। इनके पूज्य पिताश्री तुलापति सिंह जो की भी यही साधना-स्थली थी। अपने समय के वे एक श्रेष्ठ अग्निहोत्री साधक थे। इस स्थान पर भगवती चामुण्डा 'पिण्डिका'-रूप में हैं।

३. श्रीम्लेच्छ-मर्दिनी भगवती—दरभङ्गा-नगर के अन्तर्गत जिस स्थान पर इन भगवती का विशाल मन्दिर विद्यमान है, उस क्षेत्र में किसी समय एक म्लेच्छ का बड़ा आतङ्क था। लोगों के आर्त होकर श्रीजगदम्बा की प्रार्थना करने पर मां ने प्रकट होकर उस दुष्ट म्लेच्छ का संहार कर दिया और स्वयं प्रतिमा-रूप में वहीं अवस्थित हो गईं। बाद में भक्त-जनों ने मन्दिर बनवाकर उनकी प्रतिष्ठा की।

४. श्रीअहल्या-स्थान—दरभङ्गा-जिले के अन्तर्गत कमतौल रेल्वे स्टेशन से कुछ ही दूर दक्षिण में यह स्थान है। यहीं ब्रह्मा की मानस-पुत्री और गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या को भगवान् श्री रामचन्द्र ने शाप-मुक्त किया था। महा-भारत के अनुसार श्री बलभद्र भी यहाँ पधारे थे। रामनवमी के पर्व पर यहाँ विशाल मेला लगता है।

पूर्णिया के देवी-मन्दिर

१. भगवती पूरण देवी—पूर्णिया नगर के ईशान कोण में श्मशान-भूमि में यह श्रीदक्षिणा-कालिका का मन्दिर है। यहाँ चिर काल से शाक्त साधक साधना कर सिद्धि प्राप्त करते रहे हैं।

२. श्री दक्षिण-कालिका मन्दिर—पूर्णिया से लगभग १५ कि० मी० दूर ईशान कोण में अररिया के पूर्व कोशी नदी के पश्चिमी तट पर श्मशान के मध्य में भगवती दक्षिण-कालिका की एक प्राचीन प्रतिमा स्थापित थी, जिसे आस-पास की आस्तिक जनता ने एक फूस की झोपड़ी में सुरक्षित कर रखा था। संयोग-वश वहाँ एक बंगाली साधक आ पहुँचे। उन्होंने वहाँ अपनी साधना प्रारम्भ की। उनके तप के प्रभाव से झोपड़ी के स्थान पर एक भव्य मन्दिर बन गया। साथ ही एक सुन्दर पुष्प-वाटिका भी बन गयी। अब वहाँ प्रातः और सन्ध्या दोनों समय माँ का विधिवत् अर्चन-पूजन होता रहता है।

३. श्री दुर्गा-स्थान—पूर्णिया जनपद के खवासपुर में श्री दुर्गा-स्थान की बड़ी मान्यता है। अतीत काल से वहाँ बलि प्रदान होता आ रहा है। सखुआ का एक खम्भा वहाँ गड़ा हुआ था, जिसमें छाग को बाँधा जाता था। कई वर्षों के सूखे उस खम्भे में एकाएक अंकुर फूटने लगे और नये पत्ते निकल आये। इस चमत्कार से जनता की भक्ति-भावना को बड़ा बल मिला और वहाँ बड़ी श्रद्धा के साथ पूजार्चन कर लोग अपनी मनोकामनाओं को फलीभूत करते हैं।

मुजफ्फरपुर का श्रीत्रिपुरसुन्दरी-मन्दिर

मुजफ्फरपुर के रमना मुहल्ले में श्मशान-भूमि में स्व० राय साहब उमाशङ्करप्रसाद ने मधुबनी के प्रख्यात साधक स्व० पं० निरसन मिश्र के द्वारा भगवती त्रिपुरसुन्दरी की स्थापना कराई। रायसाहब के कोई पुत्र नहीं था। मिश्र जी के शुभाशीष से उन्हें पुत्र-लाभ हुआ उसी के उपलक्ष्य में उक्त मन्दिर का निर्माण हुआ और भगवती की प्रतिष्ठा की गई। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि भगवती की प्रतिमा का निर्माण ब्रह्मीभूत श्री स्वामी विद्यारण्य जी के निर्देशानुसार हुआ, जो 'मूर्खारण्य' नाम से प्रख्यात थे और श्री श्रीविद्या के मर्मज्ञ सिद्ध महात्मा थे। फलतः भगवती श्रीत्रिपुर-सुन्दरी की जैसी छवि उक्त मन्दिर में दृष्टिगत होती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

वासुकिनाथ का श्रीतारा-मन्दिर

भगवान् वासुकिनाथ के मन्दिर से १½ कि० मी० दूर पूर्व अद्वैता नामक नदी के पश्चिमी तट पर एक प्राचीन श्रीतारा-मन्दिर अवस्थित है। इस मन्दिर और इसमें प्रतिष्ठित प्रतिमा का इतिहास अज्ञात है किन्तु कुछ वर्षों से पूज्य स्वामी अद्वैतानन्द सरस्वती द्वारा वहीं 'अद्वैताश्रम' की स्थापना करने से मन्दिर की भव्यता और महिमा बहुत बढ़ गई है। उनकी शिष्या वङ्ग-कन्या कुमारी शाकम्भरी की सतत साधना से श्री तारा-मन्दिर की ख्याति देश-व्यापी हो चुकी है।

भगवानपुर-भभुआ की श्रीमण्डलेश्वरी देवी

पूर्वी रेलवे के मोहनिया स्टेशन से भभुआ पहुँचते हैं। वहाँ से दक्षिण भगवानपुर गाँव के पास कैमूर पहाड़ी पर 'श्रीमण्डलेश्वरी देवी' का गुप्त-कालीन मन्दिर है। इस प्राचीनमन्दिर में 'महिष-मर्दिनी' देवी की भव्य प्रतिमा प्रतिष्ठित है। भभुआ-क्षेत्र का यह मुख्य तीर्थ है।

नालन्दा का श्रीचण्डी-स्थान

श्री रामविलास सिंह, शिव मेडिकल हाल, चण्डी, जि० नालन्दा

किंवदन्तियों के अनुसार ऐतिहासिक नगर नालन्दा के समीप चण्डी नामक स्थान का 'चण्डी-मन्दिर' सन् १७७३ के पूर्व का बना है। कहा जाता है कि मन्दिर बनने के पहले इस स्थान की भूमि बंजर थी और जंगली वनस्पति से आक्रान्त थी। महानदी फल्गु से निकल कर गङ्गा में प्रवाहित थी, जो आज भी है। बंजर भूमि को उपजाऊ बनाने के लिये उसकी खुदाई प्रारम्भ की गई। खुदाई के समय दो शिला-खण्ड प्राप्त हुये, जिनमें से एक में सिंहासीना चतुर्भुजा मां दुर्गा की छवि थी, तो दूसरे में खड्ग और मुण्ड-हस्ता मां काली विराजमाना थीं। इन दोनों प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा पं० गरिवन पाण्डेय द्वारा कराई गई और लोग मां दुर्गा के नाम से उनका पूजन करने लगे। बाद में सन् १८८५ में इनका नामकरण 'मां चण्डी' किया गया। तब से इस स्थान का ही नाम 'चण्डी' पड़ गया है।

गोपालगंज की सिंहासिनी देवी

श्री भगवानदास सिन्धी, कमल सिन्ध होटल, गोपालगंज

सिवान से १७ कि० मी० उत्तर और गोपालगंज से ७ कि०मी० दक्षिण थावे रेल्वे स्टेशन से १ कि०मी० की दूरी पर 'थावे' नामक स्थान है। पहले यह स्थान 'रहसु' नाम से ज्ञात था किन्तु यहाँ भगवती के स्थायी रूप से रहने के कारण इस स्थान का नाम 'स्थाई' पड़ गया, जो अपभ्रन्श होकर 'स्थावे' बना और अब 'थावे' रह गया है। यहाँ सघन जंगल है, जो लगभग ६६ एकड़ में फैला है। ऐसे बीहड़ स्थान पर स्थित 'श्रीदुर्गा-मन्दिर' की अधिष्ठात्री देवी 'सिंहासिनी' नाम से प्रख्यात हैं, जिनके वर्तमान पुजारी श्री पं० हरेन्द्र पाण्डेय हैं। प्रतिमा का दाहिना पैर तो सिंह के ऊपर है और दूसरा पैर इतनी गहराई में है कि उसका पता नहीं चलता। कहा जाता है कि दो हजार वर्ष पूर्व चेरो वंश के राजा मदनसेन की प्रार्थना पर 'रहसु' नामक भक्त ने इन देवी का आवाहन किया था और देवी का आविर्भाव होते ही राजा और भक्त दोनों को मोक्ष मिल गया। तभी से भगवती यहाँ इस प्रतिमा-रूप में विराजमान हैं।

सहसराम की श्रीतारा चण्डी—प्राचीन काल के भर्ग-जनतन्त्र की राजधानी 'सुसुमार गिरि' का आधुनिक नाम सहसराम या सासाराम है। इसके दक्षिण-पूर्व में स्टेशन से २॥ मील पश्चिम सहसराम तिलोथू मार्ग पर कोकनद (काव नदी) के किनारे चन्दन पीर की पहाड़ी की एक गुफा में 'श्रीतारा चण्डी देवी' का मन्दिर है। बगल की गुफा में १वीं शती के शासक धवलप्रताप का शिला-लेख है। किंवदन्ती है कि उक्त श्रीतारा चण्डी सहस्रबाहु को मारनेवाली 'श्रीभद्रकाली' हैं किन्तु कुछ विद्वान् इन्हें श्रीतारा देवी' मानते हैं। बौद्ध भी इस देवी का पूजन करते हैं। देवी-मन्दिर के दक्षिण पहाड़ी पर उस किले का खण्डहर है, जिसे वत्स-राज उदयन ने लाल पत्थरों से बनवाया था। किसी समय यह स्थान बौद्ध तान्त्रिकों का केन्द्र था।

तिलौथू की श्रीतोतुला भवानी—डिहरी-रोहतास रेल्वे के तिलौथ स्टेशन से २ मील पश्चिम कैमूर पहाड़ी की एक गुफा में एक पहाड़ी झरने के पास 'तोतुला भवानी' का स्थान है। यहाँ रोहतासगढ़ के शासक धवलप्रताप का एक शिला-लेख है। वर्षा-काल मे यह स्थान बड़ा रमणीय हो जाता है। निर्जनता के कारण साधकों का यह प्रिय स्थल है।

आरा की अरण्य देवी

आरण्य देवी का प्रसिद्ध मन्दिर शाहाबाद के जिला-मुख्यालय आरा में अवस्थित है। आरा नामक यह नगर उत्तर रेलवे की दिल्ली-कलकत्ता मुख्य लाइन पर पटना से कोई ३१ मील पहले पड़ता है। आरा और आस-पास के स्थानों में यह मन्दिर 'आयरन' देवी के नाम से विख्यात है। निश्चित ही यह संस्कृत के 'अरण्य' का अपभ्रन्श है। आरा नगर का नाम भी कभी 'आरण्य-नगर' रहा होगा और तब देवी के नाम पर ही वह नाम पड़ा होगा। इसी तथ्य से स्थान की प्राचीनता स्पष्ट होती है।

आरा नगर वस्तुतः बहुत ही प्राचीन शहर है, जिसका ऐतिहासिक और पौराणिक महत्त्व है। पूरा क्षेत्र वनों से पूर्ण था, इस कारण इसका पुरातन नाम 'आरण्य' था, जो समय के साथ बदल कर आज आरा बन गया है। इस बात की पुष्टि मां आरण्य देवी के नाम से होती है, जो किसी के द्वारा स्थापित नहीं हैं। आरण्य देवी वास्तव में 'वन-देवी' हैं। मां आरण्य देवी नगर की देवी हैं और उनकी प्रतिमा स्वतः प्राप्त हुई थी, जिसकी भक्तों ने बहुत समय तक पूजा की व बाद में वहाँ मन्दिर का निर्माण हुआ।

किंवदन्तियों के अनुसार बकासुर नामक राक्षस इन देवी की पूजा किया करता था। धीरे-धीरे जंगल समाप्त होकर नगर बस गया और लोगों ने उस स्थान पर मन्दिर का निर्माण कराया। मन्दिर में काले पत्थर की दो आदम-कद मूर्तियाँ हैं। जो छोटी देवी दिखाई पड़ती हैं, वही मूल मूर्ति है। दूसरी बड़ी मूर्ति मन्दिर बनाते समय बनवाई गई, ऐसा लोगों का कहना है।

मन्दिर के मुख्य द्वार पर दाहिने ओर काल-भैरव और श्री गणेश जी का मन्दिर है। मुख्य द्वार के सामने से ही उक्त श्री देवी जी के दर्शन होते हैं। मन्दिर का नव-निर्माण होते समय इस मन्दिर के प्राङ्गण में सर्वश्री राम, लक्ष्मण, सीता और राधा-कृष्ण तथा लक्ष्मी-नारायण एवं हनुमान के मन्दिरों का भी भक्तों द्वारा निर्माण कराया गया।

यह बहुत ही जागृत स्थान है और इस जगह पर पूजन-अर्चन करनेवालों को मनोवांछित फल अवश्य प्राप्त होता है। पहले इस स्थान पर बलि-पूजा भी की जाती थी, जो भक्तों की मनोकामना पूर्ण होने पर उनके द्वारा दी जाती थी। लेकिन इधर कुछ वर्षों से यहाँ बलि-पूजा बन्द हो गई है।

यह मन्दिर मुहल्ला चौक में आरा-पटना मार्ग से थोड़ी दूर हटकर स्थित है। इसके आस-पास का क्षेत्र शहर की प्रसिद्ध व्यापारिक मण्डी है।

आस-पास के नगर-ग्रामों से नित्य-प्रति श्रद्धालु स्त्री-पुरुष दर्शन हेतु आते हैं। बहुत से लोग प्रातः और सन्ध्या पूजा के लिए भी आते हैं। लोगों की मनोकामनायें पूर्ण होने से वे मन्दिर के चौखट में चाँदी के सिक्के जड़वाते रहे हैं और आज भी मनोकामना पूर्ण होने पर लोग प्रायः सिक्के जड़वाते हैं।

बहुत पहले जब यह स्थान और आस-पास का इलाका जङ्गलों से ढँका था, यहाँ कोई राजा शिकार के लिए आया और उसे देवी की यह मूर्ति जङ्गल में पड़ी मिली। इस धूल-धूसरित मूर्ति को उसने अपने हाथी पर लदवाया और ले जाकर पास बहती गाँगी नदी में विसर्जित कर दिया। यह छोटी-सी नदी अब भी इस नगर के पार्श्व में बहती है और इसे, इससे कुछ ही दूर बहती गङ्गा की 'छाड़न' कहते हैं। मूर्ति को जल में प्रवाहित कर जब राजा घर लौटा, तो पाया कि वहाँ हाहाकार मचा हुआ है। पता लगा कि उसका एक-मात्र पुत्र मृत पड़ा है। राजा को पुत्र की इस आकस्मिक मृत्यु पर दुःख तो हुआ ही, आश्चर्य भी कुछ कम नहीं हुआ।

तभी शिकार में साथ गये एक दरबारी ने कहा कि इस अचानक मृत्यु का कारण दैवी प्रकोप प्रतीत होता है। राजा को बात लग गई और अन्त्येष्टि रुकवा कर वह पूजा-घर में चला गया। उसने देवी से क्षमा-याचना की और मन-ही-मन प्रतिज्ञा की कि यदि उसका पुत्र जीवित हो गया, तो वह एक भव्य मन्दिर बनवाकर देवी की स्थापना करेगा। चमत्कार होते हैं, और हुआ भी। इसके पहले कि राजा पूजा-घर से बाहर आए, पुत्र जीवित हो आया। फलतः राजा ने मन्दिर का निर्माण कराकर उसमें देवी की प्रतिष्ठा की। बाद में देवी ने अपनी पुजारिन को स्वप्न दिया कि बगल में उनकी एक सहेली की भी मूर्ति बैठे और तब से मन्दिर में देवी की दो मूर्तियाँ विराजमान हैं।

आरण्य देवी का प्रभाव अगल-बगल और दूर-दूर के इलाके तक है। लोग मनोकामना-पूर्ति के लिये यहाँ सैकड़ों की संख्या में आते रहते हैं। नवरात्रियों और अन्य पर्वों पर तो भारी भीड़ होती है और मन्दिर-प्राङ्गण के हवन-कुण्ड की आग बुझने नहीं पाती। भजन-कीर्तन और मङ्गल-गान के कार्य-क्रम लगातार चलते रहते हैं। परम्परा से मन्दिर में औरतें ही पूजा का काम देखती हैं, यह यहाँ की एक अनूठी विशेषता है। पुरुष-पुजारी यहाँ नहीं होते।

बाबू बाजार की दक्षिण कालिका

आरा नगर के बाबू बाजार मुहल्ले में दक्षिण काली की स्थापना १८५७ के महान् योद्धा वीर कुँवर सिंह द्वारा हुई है, जो उनकी आराध्या देवी थीं। मूर्ति बहुत बड़ी नहीं है लेकिन बहुत ही आकर्षक है। मूर्ति के दोनों बाजू खड्ग रखी हुई है, जो इस बात का संकेत देती है कि वहाँ पूजा बलि द्वारा की जाती थी। खड्ग काफी वजनदार है, एक हाथ से उठाना सम्भव नहीं है। खड्ग पर सोने के रंग से आँख बनी हुई है।

मसाढ़ का देवी मन्दिर—आरा से ६ मील पश्चिम और कारीसाथ स्टेशन से १ मील उत्तर-पूर्व मसाढ़ नामक गाँव में प्राचीन टीलों के ऊपर एक देवी-मन्दिर है। मन्दिर से उत्तर एक तालाब है, जो पूर्व-पश्चिम को फैला है। ऐसे तालाबों में सूर्य-वेध माना जाता है। देवी-मन्दिर से पूर्व एक वट-वृक्ष के नीचे चबूतरे पर अर्द्ध-नारीश्वर की बड़ी आकर्षक मूर्ति एक लिङ्ग में उत्कीर्ण है।

हुएनसांग के काल में मसाढ़ एक प्रसिद्ध व्यापारिक नगर था। इस नगर का उक्त देवी-मन्दिर मगध-साम्राज्य में प्रख्यात था और अति विशाल था। बख्तियार खिलजी ने इस मन्दिर को तुड़वा दिया था। उसी मन्दिर के भग्नावशेष पर वर्तमान देवी-मन्दिर स्थित है। यहाँ नवरात्रों में मेला लगता है।

मैधरा की काली देवी—आरा-सहसराम के विक्रमगंज स्टेशन से ५ मील पश्चिम मैधरा गाँव में 'काली माई' का स्थान है। पिछले ५०० वर्षों से यहाँ सामूहिक रूप से लगातार चक्र-पूजन की परम्परा विद्यमान है। पञ्च-बलि आज भी यहाँ प्रचलित है। सारा गाँव शाक्त है। लोक-मत है कि यहाँ निष्ठा-पूर्वक देवी की पूजा करने से सभी कामनायें पूर्ण होती हैं।

डुमराँव की श्री डुमरेजीन देवी—डुमराँव स्टेशन से तीन मील दूर एक सुन्दर मन्दिर में 'वन-देवी श्री डुमरेजीन' की भयावनी प्रतिमा प्रतिष्ठित है। ये वहाँ के महाराज-कुल की आराध्या हैं। इन्हीं के नाम पर डुमराँव नगर बसा है।

रोहतासगढ़ की श्रीदुर्गा देवी (रण-चण्डी)——डिहरी-रोहतास रेल्वे के रोहतास फोर्ट स्टेशन से २ मील पहाड़ी मार्ग चलने पर एक अनूठे शिव-मन्दिर के दर्शन होते हैं। इस मन्दिर के पास ही 'श्रीदुर्गा-देवी' का मन्दिर है, जो राजा मानसिंह का बनवाया कहा जाता है। ये 'रण-चण्डी' हैं। वर्तमान में वहाँ एक भग्न मूर्ति पड़ी है और मन्दिर पुरातत्त्व-विभाग की देख-रेख में है। किसी समय यह शाक्तों का केन्द्र था। योग की शिक्षा और साधना के लिए चौरासी सीढ़ियोंवाले सहस्र-दल के कमल पर शङ्कर का उक्त भव्य मन्दिर बना है। चौरासी आसनों का यह मन्दिर अपने ढंग का अनूठा है। दोनों मन्दिर राजकीय नियन्त्रण में होने से जन-सम्पर्क में कम हैं।

ब्रह्म-पुर तथा बक्सर की श्रीपार्वती माता—उक्त दोनों स्थानों में प्रसिद्ध शिव-मन्दिर हैं। इन मन्दिरों के प्राङ्गण में 'श्रीपार्वती'-मन्दिर हैं, जिनकी प्रतिमायें बड़ी भव्य हैं। भक्त यात्री इनके दर्शन करके ही लौटते हैं। महा-शिवरात्रि के समय यहाँ अच्छा मेला लगता है।

बड़ही की श्रीबाला त्रिपुर-सुन्दरी

आधुनिक बिहार के मुंगेर जनपद के अन्तर्गत बड़ही थाने के क्षेत्र में भ० बाला त्रिपुर-सुन्दरी का प्राचीन मन्दिर है। विक्रम की १५ वीं शताब्दी में 'बड़ही' ग्राम में श्री श्रीधर देव का जन्म हुआ। इनका पूर्व-नाम श्रीधर ओझा था। इनकी उपासना से प्रसन्न होकर भगवती बाला त्रिपुरसुन्दरी प्रकट होकर इन्हें साक्षात् दर्शन देती थीं। गङ्गा-तट, जो बड़ही ग्राम के पूर्वी भाग में है, उनका साधना-स्थल था।

किवदन्तियों के आधार पर उन्हें जन-कल्याण के लिये यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि श्रीबाला त्रिपुर-सुन्दरी की एक चिर-स्थायी मूर्ति और मन्दिर होना चाहिये। अपने सङ्कल्प की पूर्ति के लिये उन्होंने अपनी आराध्या देवी श्रीबाला त्रिपुरसुन्दरी से याचना की। फलतः रात्रि में उन्हें स्वप्नादेश हुआ कि—'प्रातःकाल गङ्गा-तट पर जाओ। वहाँ तुम्हें एक खप्पर में शक्ति-स्वरूप बाला प्रज्वलित शिखा के रूप में प्राप्त होंगी।' श्रीधर बाबा तत्क्षण समीपवर्ती गङ्गा-तट जा पहुँचे। प्रातःकाल वहाँ देखा कि एक देदीप्यमान ज्योति आ रही है और सभी ने उसे एक खप्पर में प्रवाहित होते पाया।

ज्योति-स्वरूपा जगज्जननी को भक्ति-भाव के साथ 'मृत्तिका-पिण्ड' में स्थापित किया गया, जो यहाँ आज भी जगदम्बा की महिमा प्रकाशित कर रही है। यह स्थान वर्षों से 'सिद्ध-पीठ' हो गया है और प्रति वर्ष हजारों लोग यहाँ अर्चना-वन्दन करने को आते हैं। इसके सिवा यहाँ शत-चण्डी, सहस्र-चण्डी यज्ञादि भी होने लगे हैं।

इस स्थान पर प्रतिष्ठित भगवती परमेश्वरी की जो शिल्प-मूर्ति है, वह आज भी अतीत के इतिहास का स्मरण कराती है। वर्तमान काल के भी ऐसे अनेक प्रत्यक्ष उदाहरण हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि यहाँ लोगों के आर्तनाद पर भगवती सद्यः द्रवित होती हैं और अभीष्ट वर प्रदान करती हैं। अन्तिम समय में श्री श्रीधर देव ने श्री जगदम्बा के पूज्य मृत्तिका-पिण्ड के सन्निकट ही चिर-समाधि ले ली और देवत्व को प्राप्त किया। उनकी निःस्वार्थ साधना ही के फल-स्वरूप श्री बाला त्रिपुर-सुन्दरी उज्ज्वल प्रतीक बनकर इस मन्दिर में आज भी विराज रही हैं।

(श्री हरिकान्तप्रसाद सिंह, 'चण्डी' वर्ष १५ से संग्रहीत)

श्री शुक्ल-शताब्दी-समारोह के अन्तर्गत

शाक्त-संगोष्ठी-पटना

जयसरमिन होटल, कंकड़बाग मार्ग, पटना (बिहार) : १७ से २० नवम्बर, १९८८

इस वर्ष 'पटना-समारोह' का आयोजन सर्वथा अप्रत्याशित रूप से ही सम्पन्न हुआ, जिसका सम्पूर्ण श्रेय 'सम्पादक की वाणी' के सम्मान्य 'प्रतिपालक'-दम्पति पं० श्रीगोविन्दशरण उपाध्याय एवं सर्व-सौभाग्यवती श्री सन्ध्या उपाध्याय को ही है। परिस्थितियाँ कुछ ऐसी थीं कि आयोजन असम्भव-सा प्रतीत हो रहा था किन्तु श्री उपाध्याय जी के आग्रह से १६ नवम्बर की रात्रि में प्रयाग से प्रस्थान करने का निश्चय हो ही गया। फिर तो पता ही नहीं चला कि किस प्रकार 'शाक्त-साहित्य' और 'श्रीशुक्ल-साहित्य' के सहित प्रदर्शनी का सारा ताम-झाम लेकर 'समारोह-समिति' के निःस्पृह मानद व्यवस्थापक सर्वश्री पं० सतीशचन्द्र उपाध्याय एवं अशर्फीलाल शुक्ल 'कौल-कल्पतरु चण्डी' के मानद सम्पादक के साथ तूफान मेल द्वारा प्रातःकाल सात बजे पटना के उक्त भव्य होटल में पहुँच गए।

होटल के सहृदय कर्मचारियों के सोत्साह सक्रिय सहयोग से १० बजे के पूर्व ही उसके प्रशस्त विशाल कक्ष में तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र पर प्रकाश डालनेवाली आकर्षक एवं उपयोगी पुस्तकें सज गईं। महा-महिम 'श्री-यन्त्र', 'भगवती श्रीबाला त्रिपुर सुन्दरी' और 'कौल-कल्पतरु शुक्ल जी' की भव्य छवियों से पूरी प्रदर्शनी जगमगा उठी। 'समिति' की त्रयी द्वारा सम्पर्क-अभियान के फल-स्वरूप १७ नवम्बर को 'शान्ति-निकेतन' के हिन्दी-विभाग के अवकाश-प्राप्त 'रीडर' वयोवृद्ध साहित्यकार डा० रामपूजन तिवारी जी की अध्यक्षता में साहित्य-गोष्ठी सुचारु रूप से सम्पन्न हुई। १८ नवम्बर को पं० श्री गोविन्दशरण उपाध्याय की अध्यक्षता में 'आध्यात्मिक गोष्ठी' का श्रीगणेश हुआ।

साहित्य और अध्यात्म का यह सङ्गम २० नवम्बर की रात्रि तक आगन्तुक जिज्ञासुओं को अभिभूत करता रहा। इस अवधि में **'शाक्त सम्मेलन पटना'** अपने संयोजक-द्वय सर्वश्री विजय वत्स एवं वीरेन्द्र गिरि के सोत्साह पुरुषार्थ से ऐसा सक्रिय हो उठा कि सभी चकित हो गए।

चार दिनों के इस सतत आयोजन में कितने ही अनूठे मनीषियों का अचानक आगमन हुआ और उसके फल-स्वरूप आनन्द की जो धारा प्रवाहित हुई, उसका वर्णन शब्दों में करना सम्भव नहीं। ऐसे महानुभावों में 'नवनीत' मासिक (मुम्बई) के सम्पादक पं० गिरिजाशंकर त्रिवेदी, पटना कालेज के पं० चन्द्रकिशोर पाण्डेय 'निशान्तकेतु', 'ज्योतिष आयुर्वेद निकेतन', पटना के सञ्चालक डा० निर्मलकुमार मिश्र, 'हिन्दुस्तान' (पटना) के उप-सम्पादक श्री अनिल विभाकर, नारायण प्रिण्टर्स, पटना के स्वामी श्री शम्भुशरण श्रीवास्तव यहाँ उल्लेखनीय हैं।

'शाक्त-संगोष्ठी-पटना' के सम्बन्ध में 'पटना-शाक्त-सम्मेलन' के महा-सचिव वत्स का वक्तव्य इस प्रकार है—

'पं० देवीदत्त शुक्ल शताब्दी-समारोह' के अन्तर्गत आयोजित शाक्त-संगोष्ठी में अपने विचारों की प्रस्तुति के पूर्व मेरे स्मृति-पटल पर अतीत के वे क्षण अनायास लौट आते हैं, जब मेरे गृह-नगर वैद्यनाथ धाम में मेरे पूज्य मामा श्री पं० विजयानन्द जी झा का आगमन हुआ। औपचारिक कुशल-क्षेम-ज्ञापन के पश्चात् जगदम्बा की प्रेरणा से अयाचित किन्तु वात्सल्य-पूर्ण परामर्श वे देते हैं—'प्रयाग से प्रकाशित 'चण्डी' पत्रिका का सदस्य बन जाओ। प्रामाणिक साहित्य का अध्ययन कर वास्तविक विज्ञानार्थी बनो।'

मामा जी का यह परामर्श वस्तुतः प्रारम्भिक दीक्षा-वत् ही था, जिससे मुझे 'चण्डी' की शरण मिली। उनके निर्दिष्ट पते पर मेरे प्रथम पत्राचार ने ही महान् भारतीय गुरु-परम्परा का मुझे दिग्दर्शन करा दिया। तब से आज तक

'चण्डी' के सौजन्य से कौल-परम्परा की मणिपुर-वासी दिव्य विभूतियों द्वारा निर्देशित तत्त्व-ज्ञान का ग्राहक-पात्र तो बना ही हूँ, वर्तमान युग की तेजोमयी गुरु-पंक्तियों के चाक्षुष और मानस दर्शनों के सौभाग्य से भी विभूषित होता रहा हूँ। 'चण्डी' की सदस्यता ग्रहण करने के बाद ही मेरी मन्त्र-दीक्षा भी हुई। अब मेरा विश्वास दृढ़तम हो चुका है कि मुझे अपने लक्ष्य-सन्धान का अभीष्ट मार्ग मिल चुका है। 'चण्डी' ने मुझ जैसे अनेक निरालम्ब जिज्ञासुओं का जो उद्धार किया है, उस हेतु कृतज्ञता-ज्ञापन नगण्य-सा ही प्रतीत होता है।

चार दिनों की 'शाक्त-संगोष्ठी' में सम्मिलित मनीषियों के रहस्योद्घाटनों, उपदेश और अनुकरणीय जीवन-चरितों से मैंने जो सीखा है, भविष्य का वह मेरा उपयोगी सम्बल रहेगा। अपने गुरु-गम्भीर ज्ञान और अपार अनुभवों से, विशेषकर पं० गोविन्दशरण उपाध्याय एवं पं० रमादत्त शुक्ल ने नई पीढ़ी को लाभान्वित कर उनका जैसा उत्साहवर्द्धन किया है, वह नेपथ्य में रहते हुए समाज को उसके हाल पर छोड़ देनेवाले सिद्ध साधकों के लिए सामयिक आह्वान भी है कि वे गुह्यता के गह्वर के बाहर निकलकर अपने शिष्य-वृत्त की परिधि का अतिक्रमण कर पतन-शील समाज और भारतीय संस्कृति का उद्धार करने हेतु आगे आएँ।

'अखिल भारतीय शाक्त-सम्मेलन' की छत्र-छाया में नव-गठित 'पटना शाक्त-सम्मेलन' इस प्रक्रिया में मील का पत्थर बनेगा, यह मेरा दृढ़ विश्वास है।

शाक्त-संगोष्ठी में पं० उपाध्याय द्वारा मिस्र के पिरामिडों का रहस्योद्बोधन, पं० शुक्ल द्वारा आगमोक्त छत्तीस तत्त्वों का विवेचन एवं आचार्य 'निशान्तकेतु' द्वारा गुरु-तत्त्व का विशद निरूपण अत्यन्त ही मर्म-स्पर्शी एवं दिशा-बोधक रहा। शक्ति-साधना-सम्बन्धी जो भ्रम और विद्वेष आज अपने ही भारतवासियों में परिलक्षित हो रहे हैं, वह हमारी विराट् संस्कृति के आधुनिक काल का एक दुःखद पहलू है। अपनी अल्प बुद्धि और अनुभव के आधार पर मैं यह दावा कर सकता हूँ कि शक्ति-साधना ही एक पूर्ण, प्रामाणिक और शाश्वत साधना है, जो प्रवृत्ति-मूलक और निवृत्ति-मूलक दोनों ही है। इसमें सर्व-देव-समभाव तो है ही, पुरुषार्थ की चतुर्वर्ग-प्राप्ति का लोक-कल्याणकारी और प्राकृतिक विधान भी है—

श्रीसुन्दरी-साधन-तत्पराणां, भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव।

फिर भी जिनका पूर्वाग्रह और भ्रम न मिटे, वे भगवान् विष्णु के इस वचन को ही प्रमाण मानकर स्वयं व्यवस्था-निर्धारण कर सकते हैं—

ज्ञानं गणेशो मम चक्षुरर्कः, शिवो ममात्मा मम शक्तिराद्या।
विभेद-बुद्ध्या मयि ये भजन्ति, ममांग-हीनः कलयन्ति मन्दाः॥

अतः जब उनकी शक्ति आद्या की ही साधना के प्रति हम विभ्रम में रहें, तो सम्पूर्ण दिव्य-भाव ही निर्वीर्य हो जाता है। अतः भगवती चण्डी से मेरी प्रार्थना है कि उनकी कृपा से भारतीय जनता अपने क्षीण होते जा रहे वीर्य और पराक्रम को पुनः प्राप्त करे। [समारोह का विस्तृत विवरण 'सम्पादक की वाणी' अङ्क १० में]

प्राण-तोषिणी तन्त्र

१२५ प्राचीन तन्त्र-ग्रन्थों द्वारा तान्त्रिक-साधना के महत्त्वपूर्ण विषयों का विवेचन

भाग १ : सर्ग-काण्ड एवम् धर्म-काण्ड, मूल-मात्र (संस्कृत में)

सुन्दर सजिल्द : 'चण्डी' के सदस्यों के लिए रियायती मूल्य ३०-०० रु०

भाग २ : अर्थ-काण्ड एवम् काम्य-काण्ड, मूल-मात्र

'चण्डी' के सदस्यों के लिए रियायती मूल्य ३०-०० रु०

भाग ३ : भक्ति-काण्ड, मूल-मात्र, मूल्य २०-०० रु०

नव योगिनी स्तोत्र

आचार्य पं० शिवशङ्कर श्रोत्रिय, पो० मांडल, भीलवाड़ा (राजस्थान)

'शिव'-तत्त्व, जब अपनी मौज में विस्तार लेता है, तो वह 'शक्ति' हो जाता है। फैलाव की दशा में उसके मुख्य नौ स्रोत ही नौ योगिनियाँ हैं। वे ही 'क'-वर्गादि शक्तियों के रूप में विस्तृत होकर सृष्टि-सञ्चालन करती हैं। उस दशा में 'शिव'-तत्त्व मित-प्रमाता (जीव-तत्त्व) के रूप में आबद्ध होकर अनेक रूपों में आसक्त होता है, किन्तु जब वह पुनः विस्तार के भाव से, विमुख होकर संहार-अवस्था की ओर उन्मुख होता है, तब विभिन्न शक्ति-रश्मियों के सान्निध्य में स्थित रहते हुए भी उसकी अवस्था क्रमशः विभिन्न भैरव-श्रेणियों में परिणत हो जाती है। तब वही शक्ति, जो विस्तार की दशा में 'शिव' (जीव-तत्त्व) की स्वामिनी बनकर उसे मित-प्रमाता अर्थात् 'पशु' बनाकर पाश-बद्ध रखती है, संहार-अवस्था को ग्रहण कर लेने से क्रमशः उसकी मित-प्रमाता की अनुयायिनी होकर उसे पति-प्रमाता अर्थात् शुद्ध 'शिव'-तत्त्व में परिणत कर देनेवाली हो जाती है। यही निम्न स्तोत्र का अभिप्राय है—

'क'-वर्ग की रश्मि—'ब्राह्मी', भैरव असिताङ्ग

कोमल-वदनी कोकिल-बयनी, कम्बु-कण्ठि कल-कवित्त-कामिनि,
कान्ता गौरी कटि-कमनीया, केलि कला-निधि काम - तरङ्गिणि।
कुसुम-शायिनी कला - रूपिणी, खेचरि गोचरि कामाख्यायी,
कुसुमित-काया ब्राह्मी माया, कुच शोभै 'असिताङ्ग' करों में॥

'च'-वर्ग की रश्मि—'माहेश्वरी', भैरव उन्मत्त

चित्ताकर्षिणि चषकी चतुरा, चंचल-चितवनि चारु-चन्द्र-मुखि,
चन्द्रालंकृति चर्चित - चण्डी, चैतन्या चक्री चामुण्डा।
जीव-ज्योति जगमग चमकावै, ज्वलित जाल जग चका-चौंधिनी,
छिन्न-मस्तिका चिति-महेश्वरी, 'उन्मत'-भैरव छवि छिटकावै॥

'ट'-वर्ग की रश्मि—'कौमारी', भैरव रुरु

टन-टन प्रकटे टुक-टुक निरखे, ठणके से ठुकराति डाकिनी,
डग-डग डोलै डमरू जैसी, ढोलकि ढमके ढुकि-ढुकि ठुमकै।
णं-कारों में नूपुर रणके, टं - ठं - डं - ढं - णं कौमारी,
'रुरू' रिझावै ठौर ठमावै, टुनि-टुनि टंकण णिणत करी है!

'त'-वर्ग की रश्मि—'वैष्णवी', भैरव कापालिक

त्वरित-नित्य तूर्यातीता तिथि, शान्ता शुचि तत्वाध्वनि तारा,
दश-वक्त्री द्यौ दुरित-नाशिनी, दैन्य - निवारिणि द्राविणि दुर्गा।

धर्म-आश्रया धरणि - धारिणी, धनदा धवला धन्या धृत्या,
नव-निधि-नन्दिनी नीलेश्वरी, तके वैष्णवी 'कापालिक' को ।।

'प'-वर्ग की रश्मि–'वाराही', भैरव चण्ड

प्रीति - पुञ्ज - प्रभु - पाश - प्रसन्नी, परात्परा परकीया पूषनि,
फट्-कारिणी बाला बल-वती, बाण-बुद्धि बगले बौद्धायिनि ।
भवनाध्वने भगे मीनाक्षी, भगवति भैरवि भुवनेश्वरि मां,
मातङ्गिनी मोहिनी माया, 'चण्ड' - प्रिया ममता वाराही ।।

'य'-वर्ग की रश्मि–'इन्द्राणी', भैरव भीषण

योगिनि याकिनि यमुना यामा, रम्या रक्ता रक्त-वारुणी,
लाकिनि लज्जा लयात्मिका लौ, ललिता लीला लोल-लोलिनी ।
वामा विजया विद्या विमला, वह्नि - वासिनी वारि-धारिणी,
वश-करणी विष - हरणी शोभै, 'भीषण'-भैरव सँग इन्द्राणी ।।

'श'-वर्ग की रश्मि–'यामा', भैरव रुद्र

सहजानन्दा सद्योजाता, सत्यानन्दा सुरेश्वरि सती,
सर्वोन्मादिनि सर्वाह्लादिनि, सर्व - स्तम्भिनि सर्व - कामदा ।
सुभग - सुन्दरी शिवा षोडशी, ह्रौं सौः स्पन्द - रूपा सुधायै,
शाकिनी हंसी स्वाहा स्वधा, यामा 'रुद्र'-समागम - सुखदा ।।

'क्ष'-वर्ग की रश्मि–'योगीशी', भैरव संहार

त्रिपुर - भैरवी त्रिपुरा - सिद्धे, त्रिपुर - व्यापिनी त्रिपुरा - मुद्रे,
त्रिशूल - सुरूपा त्र्यम्बकायै, त्रिगुणा वर क्षान्ति त्रिवर्त्मायै ।
क्षुधा - रूपिणी क्षीर - सागरी, ज्ञान - प्रदायिनी क्षं-कारिणी,
ज्ञेय - ज्ञापिनी ज्ञान - भैरवी, योगीशी 'संहार' भैरवी ।।

अ-वर्ग की रश्मि–'वामा', भैरव वामकेश्वर

अम्ब अघोरी अनुत्तरी आः, आकर्षिणि अजपा अनुवर्च्या,
अन्नपूर्णा उमा असङ्गी, इन्दिरा इच्छा उग्रा अमरी ।
उन्मत्ता उन्मनी अक्षरी, अखिला अर्द्ध-मात्रिका एका,
'वामकेश'-सह राजे वामा, आद्याऽनु-परि-छिन्नाऽपरिछिन्ना ।।

प्रकाश—अ-वर्ग के अन्त में एक पद 'अपरिच्छिन्ना' और जोड़ा है, जिसका आशय यह है कि है तो वह अपरिच्छिन्ना, किन्तु शिव की इच्छा-पूर्ति के निमित्त वह विश्व-धारण हेतु परिच्छिन्ना हो जाती है ।

***

अहं ब्रह्मास्मि

पण्डित चन्द्रकिशोर पाण्डेय, अध्यक्ष 'हिन्दी-विभाग', पटना कालेज, पटना विश्वविद्यालय

मनुष्य का सबसे बड़ा वरदान और अभिशाप ब्रह्म-चिन्तन-परम्परा है। अभी संसार में तीन सौ जीवित धर्म हैं। इनमें प्राय: दस धर्मों की प्रमुखता है। उन्हें लोग जानते भी हैं और संसार के निवासी इन्हीं धर्मों के माननेवाले हैं। शेष धर्म के मतावलम्बियों की संख्या कम है, इसीलिए उनका इतना प्रचार-प्रसार न हो सका। इन सभी धर्मों की आचार-संहिताओं और अध्यात्म एवं दर्शन की तर्क-प्रक्रिया तथा मान्यताओं में भिन्नताएँ हैं, परन्तु एक आधार पर सभी धर्म सहमत एवं एकाधार हैं और वह है--ब्रह्म-विषयक चिन्तन।

ब्रह्म अपने भिन्न-भिन्न नामों और आकृतियों में सभी धर्मों के लिए सर्व-स्वीकृत आधार-तत्त्व (कॉमन फैक्टर) है। पर-वर्ती काल में धर्म से आचार-संहिताएँ अलग हो गईं। दर्शन अलग हो गया, योग-विद्या पृथक् हो गई, ध्यान-प्रक्रिया और हठ-प्रक्रिया पृथक् हो गई। बेचारा ईश्वर भी अलग हो गया! धर्म का संयुक्त परिवार विघटित हो गया! यह बँटवारा तर्क और विज्ञान के न्यायालय में हुआ है। और अब यह कहा जाने लगा है कि ईश्वर विफल हो गया (गॉड दैट हैज फेल्ड)। इसी क्रम में कुछ और आगे बढ़-चढ़ कर कहा जाता है--'परमात्मा ने मनुष्य को पैदा किया या नहीं, यह सन्देहास्पद है, परन्तु यह निस्सन्देह है कि आदमी ने परमात्मा को पैदा किया है। अपने-अपने धर्माश्रय में जैसा ईश्वर चाहा, सिरज लिया। अपनी इच्छा-आकांक्षा के अनुकूल उनमें आकृति भर दी। अपने मन के मुताबिक उस ईश्वर में गुण भर दिए। किसी मूर्ति-शाला से निकली हुई मूर्ति की तरह ईश्वर तैय्यार!'

'ब्रह्म-चिन्तन' वरदान इसलिए सिद्ध हुआ कि मानव-जाति जितना जो उत्तम और उदात्त, शुक्ल और अनाविल, महत् और महनीय सोच पाया है, वह ब्रह्माश्रय में ही। अभिशाप इसलिए कि धर्म-प्रतिपादित अपने-अपने अमूर्त ब्रह्म के वर्चस्व और बादशाहत के लिए जितना रक्त-पात हुआ है, उतना विश्व-युद्धों में भी नहीं हुआ है। धर्म अन्ततोगत्वा धर्मान्धता तक पहुँचा देता है।

ब्रह्म-चिन्तन और धर्माश्रय के साथ आस्तिक-नास्तिक दर्शन की परम्परा भी अपना महत्त्व रखती है। मैं एक ऐसे परिवार में उत्पन्न हुआ, जहाँ बोधोदय के साथ ही मैंने पूजा-पाठ, जप-यज्ञ, आरती-वंदन, अनुष्ठान, पुरश्चरण, पर्व-त्योहार, तर्पण-मार्जन का वातावरण देखा। मैं इस संसार से मुक्त भी नहीं हो सकता था। फिर विज्ञान, दर्शन-शास्त्र, मनोविज्ञान-शास्त्र, नृतत्व-शास्त्र, विभिन्न राजनीति-शास्त्र के अध्ययन ने एक बात के प्रति आस्था-शील बना दिया कि "सत्य" वही है, जिसे प्रयोग-शाला में पुन: परीक्षित किया जा सकता हो। इस वैज्ञानिक दृष्टि से धर्मान्धता और अपरीक्षित धर्माचरण से दृष्टि हट गई। इस मानसिकता में तन्त्र और ध्यान-योग ने मुझे अधिक आकर्षित किया। दृष्टि और द्रष्टा का निरूपण-भाव यहीं बना।

रामकृष्ण और विवेकानन्द की कथा मैंने विद्यालय के दिनों में पढ़ी थी। विवेकानन्द किसी आप्त और सिद्ध पुरुष के सन्धान में थे। जिनसे मिलते, वे तीन ही प्रश्न करते—'(१) क्या ईश्वर है? (२) आपने उस ईश्वर को देखा है?' और

'(३) क्या आप उस ईश्वर को मुझे दिखा सकते हैं?' पहले प्रश्न का स्वीकृति-पूर्ण उत्तर तो सभी देते, पर दूसरे प्रश्न पर निन्यानबे प्रतिशत सन्त-महात्मा मौन हो जाते, सिर हिला देते। और फिर तीसरे प्रश्न पर तो सभी निरुत्तर! विवेकानन्द निराश हो गए थे। किसी और से मिलने की इच्छा नहीं रही। तभी उन्हें किसी ने परामर्श दिया कि 'रामकृष्ण परमहंस से मिलो, सम्भवतः समाधान मिल जाए।'

अनिच्छा-भाव से, पर कौतूहल-वश विवेकानन्द रामकृष्ण परमहंस के पास पहुँचे। पहले संक्षिप्त परिचय और फिर प्रश्नों का वही सिलसिला। विवेकानन्द ने तीनों प्रश्न रखे। रामकृष्ण के उत्तर थे '(१) हाँ, ईश्वर है। (२) हाँ, मैंने ईश्वर को देखा है, जैसे तुम्हें देख रहा हूँ।' और '(३) हाँ रे, मैं अभी तुम्हें उस ईश्वर से साक्षात्कार कराता हूँ।'

इतिहास का यह अद्भुत आध्यात्मिक क्षण रहा होगा। एक आत्माभिलाषी जिज्ञासु, एक सिद्ध सन्त और एक सर्वात्म-चेता देवी। आस्तिकता और नास्तिकता को लेकर विवादों का सिलसिला बहुत पुराना है। यह बोध और अनुभूति की बात है। बोध और अनुभूति वस्तु नहीं है, जिसे देखा-दिखाया जा सके। इसलिए यह अनुभवैक-गम्य है।

मुझे एक प्रसङ्ग की स्मृति है। एक बार आस्तिकों और नास्तिकों का सम्मेलन हुआ, जिसमें सर्व-श्रेष्ठ आस्तिक और सर्व-श्रेष्ठ नास्तिक का निर्वाचन हुआ। अब इन दोनों में शास्त्रार्थ का क्रम चला। पन्द्रह दिनों तक शास्त्रार्थ होता रहा। अन्तिम दिन आस्तिक-शिरोमणि ने घोषणा कर दी—'आज से मैं नास्तिक हूँ।' और नास्तिक-शिरोमणि ने घोषणा की—'आज से मैं आस्तिक बन गया।' लेकिन ये दोनों बातें बेमानी हैं। महत्त्व मान्यता और स्व-साक्षात्कार का है। इस क्रम में कुछ अनुभूति-सिद्ध और स्व-साक्षात्कृत महात्माओं और साधकों का नामोल्लेख तथा सिद्धान्त-सूत्र-घोषणा का विश्लेषण समीचीन होगा।

एक बार मुझसे पूछा गया—"विश्व का सर्व-श्रेष्ठ वाक्य या महा-वाक्य क्या है?" मैंने कहा था, "अहं ब्रह्मास्मि" की आर्ष घोषणा। इससे महत्तर महा-वाक्य मुझे मिला नहीं। "मैं ही ब्रह्म हूँ"— इससे महद्-वाक्य और क्या हो सकता है? अक्षर-ब्रह्म का भी अनेकत्र उल्लेख है। केनोपनिषद् (१.४) में कहा गया है—

"यद्-वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते, तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।"

अर्थात् जो वाणी से प्रकाशित नहीं है, परन्तु जिससे वाणी ही प्रकाशित होती है, उसी को तू ब्रह्म जान। जिस देश-कालावच्छिन्न वस्तु की लोक उपासना करता है, वह ब्रह्म नहीं है।

ब्रह्म को जानने और न जानने से भी ऊपर की बात का उल्लेख है। केनोपनिषद् (२.२) में ही एक रहस्य और तत्त्व-चिन्तन का उल्लेख किया गया है—

"नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च, यो नस्तद्-वेद तद्-वेद नो न वेदेति वेद च।"

अर्थात् मैं न तो यह मानता हूँ कि मैं ब्रह्म को अच्छी तरह जान गया हूँ और न ही यह समझता हूँ कि उसे नहीं जानता हूँ। इसलिए मैं उसे जानता हूँ और नहीं भी जानता। हम शिष्यों में जो (ब्रह्म को) इस प्रकार जानता है, वही उसे जानता है। इस स्थापना की पुष्टि "ब्रह्म" के शब्द-निर्वचन से भी होती है। जिस "वृंह" धातु से ब्रह्म-शब्द व्युत्पन्न है, उसका अर्थ ही है वृंहण-शील। हम ब्रह्म को जितना जान पाते हैं, उतना ही बड़ा हिस्सा अज्ञात होकर उपस्थित हो जाता है।

ब्रह्म और ब्रह्म-ज्ञान के सम्बन्ध में दूसरा महत्त्व-पूर्ण परिचय मुझे अम्भृण ऋषि की पुत्री वाक् की वाणी से हुआ। वाक् के मन्त्र को "देवी-सूक्त" कहते हैं, जो ऋग्वेद में व्यवस्थित है। इस ऋग्वेद-व्यवस्थित और वाक्-कथित देवी-सूक्त में आठ श्लोक हैं। उन ऋचा-श्लोकों में एक है—

"अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्,
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरि-स्थात्रां भूर्य्यावेशयन्तीम्।"

अर्थात् मैं ही संपूर्ण जगत् की अधीश्वरी हूँ, अपने उपासकों को मैं धनादि से समृद्ध करती हूँ। साक्षात्कार करने के योग्य पर-ब्रह्म को मैं अपने से अद्वैत—अभिन्न मानती हूँ। मैं सभी पूजनीय देवों में प्रधान हूँ। मैं प्रपञ्च-रूप से अनेक भावों में स्थित हूँ। संपूर्ण भूतों में मेरा प्रवेश है। अनेक स्थानों में रहनेवाले देवता जहाँ कहीं, जो कुछ भी करते हैं, वह सब मेरे लिए ही करते हैं। अर्थात् मैं ही ब्रह्म और ब्रह्म की शक्ति भी हूँ।

यहाँ वाक् की वाणी "अहं ब्रह्मास्मि" से एक चरण आगे है।

तीसरे चरण में कबीर उल्लेखनीय हैं। वे अपनी अनुभूति और व्यञ्जना में और आगे चले जाते हैं। यथा—

कबिरा मन निर्मल भया, ज्यों गंगा का नीर।
पाछे-पाछे हरि फिरै, कहत कबीर-कबीर॥

कबीर मन की निर्मलता को महत्त्व देते हैं। इस निर्मलता के आने पर अनाविल पारदर्शिता आती है। फिर कबीर ब्रह्मत्व से भी आगे चले जाते हैं। परमात्मा (हरि) ही कबीर के पीछे-पीछे दौड़ रहा है, पुकारता हुआ चल रहा है कि 'कबीर, जरा रुको, तुम्हारे दर्शन कर अपना अस्तित्व सार्थक और धन्य कर लूँ।' पर कबीर को अवकाश कहाँ ? हरि के साथ होने की जरूरत ही क्या ? हरि ही कबीर का नाम जप रहा है !

परम ईश्वरीयता की आत्मिक अनुभूति में ईश्वर भी पीछे छूट जाता है। इसलिए आस्तिकता-नास्तिकता दोनों ही स्थितियाँ एक स्तर पर पहुँचकर अर्थहीन हो जाती हैं। फिर जब अष्टावक्र-जनक-सम्वाद पढ़ा, तो लगा कि एक-मात्र यही स्थिति आकांक्षणीय है—केवल साक्षी-भाव की स्थिति। जिस निरञ्जन (आकाश) में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड स्थित है, वह व्योम ही परम है।

सृष्टि का नियन्ता जो कर रहा है, उसमें हम परिवर्तन करने का दुष्प्रयत्न क्यों करें ? इसलिए कोई अभ्यास या अनुष्ठान भी नहीं। यह सारा कुछ उपक्रम अप्राकृतिक है। ब्रह्म तो हम हैं ही। प्रत्यभिज्ञा की आवश्यकता है। कुछ करने की भी जरूरत नहीं। केवल साक्षित्व अपेक्षित है। फिर तो महा-वाक्य अर्थवान् हो जाता है—"अहं ब्रह्मास्मि।"

एक स्थल पर कबीर और आगे बढ़ते हैं। उन्होंने कहा—

"सुन्न मरै, अजपा मरै, अनहद हू मरि जाय, राम-सनेही ना मरै, कह कबीर समुझाय।"

आत्म-बोध एवं सर्वात्म-मनस्विता के पृष्ठाधार पर इससे ऊँची बात मिलती नहीं। ऐसी अनुभूति और स्थिति, जहाँ शून्य भी मर गया है।

पृथ्वी, पानी, पवन, तेज और आकाश—इन पाँच तत्त्वों से सृष्टि की संरचना हुई है। इनमें अन्तिम तत्त्व 'आकाश' को छोड़कर शेष चारों तत्त्व बनते-मिटते हैं, परन्तु आकाश अमर है। वही 'परम' है। 'परमः आकाशः'। इसीलिए परमात्मा शब्द का अर्थ है—परम (आकाश) में व्याप्त आत्मा। वही आकाश (परम) निरञ्जन (निः+अञ्जन) है अर्थात् जहाँ ग्रह-नक्षत्रादि बनते और मिटते हैं, पर उस निरञ्जन (आकाश) पर कोई अनुचिह्न शेष नहीं रहता। कोई रेख नहीं लगती। कोई छाप नहीं छूटती। वही शून्य है। कबीर के लिए वह 'सुन्न' (शून्य) भी मर गया है।

कलि-युग के लिए जप-योग की चरम महिमा है। कहा गया—"कलौ जपात् सिद्धिः न संशयः।" 'जप' नाम या अक्षर का होता है। परमात्मा का स्थायी अधिवास नाम या अक्षर ही है, जो अविनाशी एवं अक्षरणीय है। वाचिक, उपांशु, मानसिक इत्यादि जप-प्रक्रिया के निरन्तर अभ्यास से एक स्थिति यह आती है, जब बिना जप किये भी अन्तःकरण जप-शील बना रहता है। यही अजपा-जप की उत्कृष्ट स्थिति है। कबीर कहते हैं—'अजपा मरै।' साथ ही वे यह भी कहते हैं कि 'अनहद हू मरि जाय।'

अनहद अर्थात् 'अनाहत नाद'। 'आहत-नाद' वाणी या वैखरी को कहते हैं। 'अनाहत नाद' ब्रह्म का पर्याय है। कबीर की साधना-दशा और सिद्धावस्था में वह अनहद (अनाहत नाद = ब्रह्म) भी मर जाता है।

अन्त में कबीर कहते हैं—'राम-सनेही ना मरै।' राम का स्नेही अर्थात् साधक जीवित है। 'सनेही' में 'स्नेह' जीवित रहता है। यही 'स्नेह' प्रेम है, जिसे कबीर 'ढाई आखर' कहते हैं। और फिर कबीर इस सिद्धावस्था को समझा-समझाकर कह रहे हैं। जो स्वयं समझ नहीं पायेगा, वह समझा भी नहीं पाएगा। कबीर स्वयं समझ चुके हैं। इस 'रस वै सः' का आस्वाद वे ले चुके हैं। इसीलिये समझा रहे हैं। वे समझाने के अधिकारी हैं। एक सम्पूर्ण ब्रह्म-मयता, ब्रह्मास्मिता, ब्रह्मत्व। कबीर इस ऊँचाई पर बैठे हैं।

साधना के प्राङ्गण में एक और सन्त-कवि हैं—मलूकदास। इनकी दो पंक्तियाँ ही जन-जिह्वा पर हैं—

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम। दास मलूका कह गये सबके दाता राम।।

परन्तु मलूकदास आत्म-बोध, स्व-साक्षात्कार और ईश्वर-दर्शन का एक ऐसा प्रीति-पद गाते हैं, जैसा आज तक कोई गा न सका। उनका पद है—

माला जपे न कर जपे, जिह्वा जपे न राम, सुमिरन मेरा हरि करै, मैं पाया बिसराम।

अर्थात् न तो माला (रुद्राक्षादि) जपने की आवश्यकता है। और न कर-माला पर जप करने की आवश्यकता है। यहाँ तक कि जिह्वा पर भी राम-नाम के जप की अब आवश्यकता नहीं है।

अन्तर्याग और अन्तर्यात्रा में स्थूल सूक्ष्म-तर होता चला गया है। 'माला' शरीर से बाहर की वस्तु है, जिसे प्राप्त कर जप किया जाता है। माला छूट गई है, छोड़ दी गई है। अब कर-माला पर जप चल रहा है। दाहिने हाथ की उँगलियों की पोरों पर जप चल रहा है। बाह्यता अब भी बनी है। यह कर-माला भी विस्मित हो जाती है। अब जिह्वा पर वैखरी और उपांशु जप चलने लगते हैं। यह प्रक्रिया भी शेष हो जाती है। बीच में अनेक सोपान आये होंगे—मध्यमा, पश्यन्ती और परा की स्थिति, अजपा-जप और अनाहत-नाद की स्थिति। फिर यह सब भी समाप्त हो जाता है। अब किसी पूजा-पाठ, जप-योग, अनुष्ठान-पुरश्चरण की आवश्यकता नहीं। कोई भी श्रम नहीं। अब तो पूर्ण विश्राम (बिसराम) की स्थिति है। अब तो 'सुमिरन मेरा हरि करै' की स्थिति है। परमात्मा ही मलूकदास का नाम-जप कर रहा है। मलूकदास पूर्ण-ब्रह्मत्व की विश्रामावस्था में हैं। और इधर परमात्मा (हरि) ही मलूकदास का नाम जप रहा है। साधक की यह भृङ्गी-कीट-साधना सिद्धि की चरमावस्था है।

गुह्य-गुन्जन, शून्य-शोधन, कूट-कथन, निरञ्जन-विनियोग की इस परमावस्था पर पहुँचने के साधन दो ही हैं—ध्यान और प्रेम। प्रेम परिधि है और ध्यान केन्द्र। प्रेम बाह्यता है, ध्यान आभ्यन्तरता। प्रेम योग है, ध्यान वियोग। प्रेम परस्वता है, ध्यान स्वता। सभी साधक, सन्त और महात्मा इन्हीं दोनों तत्त्वों—'प्रेम और ध्यान' का व्याख्यान भिन्न-भिन्न शैली में करते हैं।

जहाँ जिस मूलाधार-चक्र पर प्रेम और ध्यान एकत्रित हो जाते हैं, उसका नाम है—'तन्त्र'। यह 'तन्त्र', दीक्षा-सम्मत और साधना-सापेक्ष है। इसकी पुनः पुनः परीक्षणीयता प्रयोगशाला की भाँति वैज्ञानिक और सत्याश्रित है।

सहस्र-मन्त्र-सार-संग्रहः

श्री 'कुल-भूषण', प्रयाग (उ० प्र०)

कल्याण मन्दिर प्रकाशन द्वारा प्रकाशित **'मन्त्र-कोष'** (मूल्य ५५=०० रु०) का अवलोकन कर 'चण्डी' के एक पाठक बन्धु ने हमें सूचना दी कि हैदराबाद (आंध्र प्रदेश) में 'मन्त्र-शास्त्रसार-संग्रह समिति' नाम की एक संस्था है और उसके द्वारा उक्त नाम का एक ग्रन्थ दो भागों में प्रकाशित हो चुका है। हमने तुरन्त ही उक्त संस्था को पत्र लिखा और उन्होंने हमें उक्त ग्रन्थ की एक प्रति भेज भी दी। 'चण्डी' के पाठकों की जानकारी के लिए हम यहाँ उसका परिचय संक्षेप में दे रहे हैं।

इस ग्रन्थ का सङ्कलन श्री सि. वि. सीताराम अय्यर महोदय ने मन्त्र-शास्त्र के अनेक ग्रन्थों के आधार पर किया है, किन्तु इन ग्रन्थों की तालिका नहीं दी गई है। यह कमी खटकती है। समिति के अध्यक्ष श्री डी. वेंकटावधानी ने अंग्रेजी में दो पृष्ठों का 'इण्ट्रोडक्शन' लिखा है, जिससे ज्ञात होता है कि ग्रन्थ के संकलन-कर्ता श्री अय्यर ८० वर्षीय वयोवृद्ध विद्वान् हैं और कदम्बकुरिची (तमिलनाडु) के निवासी हैं। उन्होंने जो परिश्रम किया है, वह वस्तुतः श्लाघनीय है।

ग्रन्थ के प्रारम्भ में श्री के० पी० शङ्कर शास्त्री वेङ्गलूर द्वारा संस्कृत में लिखित छः पृष्ठों की भूमिका है। शास्त्री जी शृङ्गेरी पीठ से सम्बन्धित श्रेष्ठ विद्वान् हैं और उन्होंने उक्त भूमिका में अनेक ज्ञातव्य बातों पर शोधपूर्ण प्रकाश डाला है। उन्होंने लिखा है कि प्रस्तुत ग्रन्थ में सात सौ से अधिक विभिन्न देवताओं के मन्त्र, उनके ऋष्यादि, विशेष न्यासों, परिवार-देवता के मन्त्रों और दीक्षा-ग्रहण-काल आदि सूचनाओं के साथ संग्रहीत हैं।

शास्त्री जी ने बताया है कि "एक ही परमात्मा लोक-रक्षा और योग-क्षेम-व्यवस्था के लिए १. मत-देवता, २. कुल-देवता, ३. आत्म-देवता, ४. इष्ट-देवता, ५. गृह-देवता, ६. ग्राम-देवता, ७. लोक-देवता इत्यादि अनेक भेदों में वर्णित हुआ है। एक ही देवता के मन्त्रार्थ-भेद से अनेक नाम, ध्यानादि मिलते हैं। उदाहरण के लिए इसी संग्रह-ग्रन्थ में महा-गणपति के १० से अधिक भेदों का वर्णन है। इसी प्रकार दुर्गा के अग्नि-दुर्गा, वन-दुर्गा आदि बहुत से भेद हैं, अष्ट-लक्ष्मी-भेद और मेधा दक्षिणामूर्ति, ज्ञान दक्षिणामूर्ति, वीणा दक्षिणामूर्ति इत्यादि भेद दृष्टिगत होते हैं। सात्विक, राजस, तामस, शान्तिक और पौष्टिक आदि फल-विशिष्ट भेदों के अनुसार मन्त्रों के अनेक भेद और उनके विविध प्रकार के प्रयोग मिलते हैं।"

शास्त्री जी की पूरी भूमिका पठनीय और मननीय है। सम्भव हुआ, तो अगले अङ्क में हम उसका हिन्दी-रूपान्तर प्रकाशित करेंगे।

'सहस्र-मन्त्र-सार-संग्रहः' संस्कृत में है। इसके प्रथम भाग के प्रारम्भ में १. आसन-विधिः, २. भूत-शुद्धिः, ३. गुरु-ध्यान-श्लोकाः, ४. गुरु-मन्त्र-देवताश्च, ५. दीक्षा-काल-निर्णयः, ६. पुरश्चरण-कालः, ७. देवी-पर्वाणि, ८. मन्त्राणां संस्काराः, ९. मन्त्राणां दोषाः—ये नौ विषय दिए गए हैं किन्तु 'प्रथम-ग्रन्थ-विषयः' नाम से जो अनुक्रमणिका दी गई है, उसमें इनका उल्लेख नहीं है। इसी प्रकार पृष्ठ १२-१३ पर 'प्रणवोद्धारः, प्रणव महा-मन्त्रः, महा-वाक्यानि, तार-त्रय-मन्त्रः, हंस-मन्त्रः' दिए हैं, जिन्हें विषय-सूची में छोड़ दिया है। इससे स्पष्ट है कि विषय-सूची त्रुटि-पूर्ण है।

पृष्ठ १८९ पर श्री बाला का विषय दिया है। पहला मन्त्रोद्धार अष्टाक्षर मन्त्र 'ऐं क्लीं सौः बालायै नमः' का है, जिसके ध्यान में 'बालामरुणाम्बुज-ज्याम्' छपा है। पृष्ठ १९१ में भी यही ध्यान त्र्यक्षर मन्त्र के सन्दर्भ में पुनः छपा है, वहाँ 'बालामरुणाम्बुजस्याम्' छपा है। दोनों ही अशुद्ध हैं। होना चाहिए 'बालामरुणांबुजस्याम्'। इस एक उदाहरण से प्रतीत होता है कि ग्रन्थ में अशुद्धियाँ हैं। पृष्ठ ४७ में त्र्यक्षरी का 'त्यक्षरि', ५० में 'भैरब', ५८ में 'उन्मिनो', ६५ में 'संविक्त', ६१ में 'सहुजा', ७५ में 'परमेष्टि', ८६ में 'दक्षिणमूर्ति', ८७ में 'खङ्गरावण', १४२ में 'कात्यानी', १४६ में 'स्मशान',

१८८ में 'बगलमुखी', २५१ में 'दुधांबा', ३१७ में 'कामनापरवेन' जैसे अशुद्ध शब्द मोटे अक्षरों में शीर्षक-रूप में छपे हैं, जिससे उक्त कथन की पुष्टि होती है।

पृष्ठ ३३ में महागणपति-मन्त्र का विनियोग दिया है, किन्तु ऋष्यादि-न्यास का कोई उल्लेख नहीं है। यह ग्रन्थ-सम्पादन की त्रुटि दर्शाता है।

ग्रन्थ के द्वितीय भाग में कुछ पूजन-यन्त्रों के रेखा-चित्र दिए गए हैं। किन्तु 'यन्त्रोद्धार' नहीं दिए हैं। श्री त्रिपुर-भैरवी के पूजा-यन्त्र में मध्य त्रिकोण ऊर्ध्वमुख छपा है, जो अशुद्ध है।

यह सच है कि इतने बड़े संग्रह-ग्रन्थ में उक्त प्रकार की सामान्य त्रुटियों का होना स्वाभाविक है। इनका उल्लेख यहाँ इसलिए किया गया है कि उक्त ग्रन्थ को सावधानी से पढ़े जाने की आवश्यकता है और यदि किसी मन्त्र का किसी को प्रयोग करना हो, तो वह केवल पुस्तक में दिए विवरण का सहारा न ले, उस विवरण को किन्हीं योग्य गुरुवर को अवश्य दिखा लें और जो त्रुटियाँ हों, उन्हें दूर कर तब प्रयोग में लावें।

श्री अय्यर जी ने लगभग एक सहस्र मन्त्रों को संगृहीत कर बड़ा ही स्तुत्य कार्य किया है। मन्त्र-विज्ञान में रुचि रखनेवालों को उनके इस महत् कार्य से अवश्य लाभ उठाना चाहिए। उक्त दोनों भागों का मूल्य है ६०)।

सूचना—१. 'शक्ति-पीठ काशी' विशेषाङ्क के आगे के पृष्ठ → →

'चण्डी' वर्ष ४७, अङ्क ६ (सितम्बर ८८) द्वारा 'शक्ति-पीठ काशी' विशेषाङ्क प्रारम्भ हुआ है। अङ्क ६ में इस विशेषाङ्क के २४ पृष्ठ दिये गये थे। अङ्क ७ में पृष्ठ २५—से ३२ दिये गये हैं। प्रस्तुत अङ्क ८ में उसके आगे के पृष्ठ ३३ से ४० दिये जा रहे हैं। 'चण्डी' के आगामी अङ्कों में इसी प्रकार ८ या १६ पृष्ठ इस दुर्लभ विशेषाङ्क के दिये जायेंगे। इसकी पृष्ठ-संख्या अलग है।

२. 'चण्डी' वर्ष ४७ का आगामी अङ्क ९

'चण्डी' वर्ष ४७ का यह अङ्क ८ (नवम्बर ८८) आपकी सेवा में है। इसके पूर्व अक्टूबर ८८ तक इस वर्ष के कुल ७ अङ्क आपको मिल चुके हैं।

'चण्डी' वर्ष ४७ अङ्क १ और ३ की पृष्ठ-संख्या परिस्थिति-वश कम रही। अतः अङ्क ७ और ८ में अधिक पृष्ठ दिये गये हैं। अङ्क ९ सभी पाठकों की सेवा में २५ दिसम्बर को भेजा जायेगा, जो जनवरी १९८९ के प्रथम सप्ताह तक सबको मिल जायेगा। यदि प्राप्त न हो, तो कृपया हमें सूचित करेंगे।

३. प्रयाग, कुम्भ-मेला सं० २०४५ वि०—सन् १९८९ ई०

मकर-संक्रान्ति २०४५ वि०—१४ जनवरी, १९८९ से प्रयाग का विराट् 'कुम्भ-मेला' प्रारम्भ होगा। इस कुम्भ-मेले में 'अखिल भारतीय शाक्त-सम्मेलन' द्वारा विविध आयोजन सम्पन्न होंगे।

जो बन्धु मेले में आना चाहते हों, वे कृपया हमें तुरन्त लिखने की कृपा करेंगे। पहले से सूचना प्राप्त होने पर ही हमारे द्वारा निवास आदि आवश्यक सुविधा सुलभ हो सकेगी।

अतः सभी इच्छुक बन्धुओं से विनम्र निवेदन है कि इस सम्बन्ध में पूरी सूचना शीघ्र-से-शीघ्र हमारे पास भेजने की कृपा करेंगे। यथा—१ कितने व्यक्ति मेले में आयेंगे? २ किस तारीख को आयेंगे व कितने दिन मेले में रहना चाहेंगे? ३ निवास की उनकी अपनी व्यवस्था है या नहीं? आदि।

वाम-मार्ग की साधना द्वारा शक्ति की स्फर्ति अति शीघ्र होती है, क्योंकि इस मार्ग के साधकों में 'भेद-मयी भावना' और 'दुष्ट-वासना' नहीं होती। यह मार्ग 'राज-योग' का मुख्य पोषक है। इस मार्ग में किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध न होने से सिद्धियाँ तथा आत्म-सन्तोष की प्राप्ति और वासनाओं की निवृत्ति 'कण्टकेनैव कण्टकं' वत् अनायास ही होती है।

अब रह गया 'कौल'। यह एक सार्वजनिक धर्म है। इसे मनुष्य मात्र ग्रहण कर सकता है। हठ-योग, राज-योग, अग्निहोत्रादि सभी से मिश्रित होने से कोई भी व्यक्ति धनाभाव और जनाभाव होने पर भी इस धर्म का पालन कर सकता है। इसकी साधना के लिए किसी भी पदार्थ या तीर्थ-व्रत-जप-संयम आदि की आवश्यकता नहीं। केवल भावना-युक्त भाव, सच्चाई, बँधा समय—इसकी साधना के लिए आवश्यक है। इसी से इसका नाम 'कौल' पड़ा।

'कुले भवः—कौलः' अर्थात् जो जिस घर में जन्मा, उसका वही काम होता है, और दूसरे के आचरण को ही 'पर-धर्म' कहा जाता है। प्रत्येक गृहस्थ की प्रवृत्ति के अनुसार देवता की उपासना—यही 'कुल-धर्म' है। गौड़ में गौड़ाचार, कश्मीर में कश्मीराचार, केरल में केरलाचार आदि आचार इसी क्रम से बने हैं। इससे परमात्मा का, पदार्थों का और विद्या का सभी प्रकार से अन्वेषण हो पाता है।

'क' ब्रह्म की संज्ञा है, 'ल' पृथ्वी की और 'अ' चन्द्रमा की कला का नाम है। आशय यह है कि ब्रह्म से लेकर पृथ्वी तक। इस कुल-धर्म में कोई अङ्ग-हीन नहीं रहता, किसी भी पदार्थ को हेय दृष्टि से नहीं देखा जाता क्योंकि संसार में कोई भी पदार्थ तत्त्व-हीन नहीं है।

वर्तमान काल में जिसको जो व्यापार, धर्म और देवता अच्छे लगते हैं, वह उसी को ग्रहण कर अन्यान्य धर्मों की जुगुप्सा में रत हो जाते हैं। काल के प्रवाह ने अपने-अपने निजी धर्म से लोगों की आस्था हटा दी और भगवद्-वाक्य 'स्व-धर्मे निधनं श्रेयः, पर-धर्मो भयावहः' की उपेक्षा होने लगी। ऐसे समय में यदि 'कौल धर्म' का आश्रय लोग करें, तो दुर्दशा उत्तम दशा में बदल जायगी क्योंकि 'कौल धर्म शाश्वत धर्म है। इस धर्म के मुख्य देवता हैं—'अर्द्ध-नारीश्वर'। इस देवता में प्रकृति और पुरुष दोनों संयुक्त हैं। एक से दूसरा अलग नहीं है। प्रकृति-मार्ग का आश्रय लेनेवाले व्यक्ति को ब्रह्मा-सरस्वती या लक्ष्मी-नारायण, कोई भी देवता हों, उनका ध्यान कुल-प्रथा के अनुसार ही करना चाहिए। यथा—

अमृतार्णव-मध्योद्यन्मणि-द्वीपे सु-शोभिते। कल्प-वृक्ष-वनान्तःस्थ-मणि-माणिक्य-मण्डपे ॥
नव-रत्न-मयं श्रीमत्-सिंहासन-गतेऽम्बुजे। त्रिकोणान्तः समासीनं चन्द्र-सूर्यायुत-प्रभम् ॥
अर्द्धाम्बिका-समायुक्तं प्रविभक्त-विभूषणं। कोटि-कन्दर्प-लावण्यं सदा षोडश-वार्षिकम् ॥
मन्द-स्मित-मुखाम्भोजं त्रि-नेत्रं चन्द्र-शेखरम्। दिव्याम्बर-स्रगालेपं दिव्याभरण-भूषितं॥
पान-पात्रं च चिन्मुद्रां त्रिशूलं पुस्तकं करैः। विद्यां संसिद्धि-विभ्राणं सदाऽऽनन्द-मुखेक्षणम् ॥
महा-षोढोदिताशेष-देवता-गण-सेवितम्। एवं चित्ताम्बुजे ध्यायेदर्ध-नारीश्वरं शिवम् ॥

'कुलार्णव तन्त्र' में अर्द्ध-नारीश्वर का उक्त ध्यान देने के बाद निर्देश किया है कि—

स्त्री-रूपां वा स्मरेद् देवीं, पुं-रूपं वा स्मरेत् प्रिये !
अथवा निष्कलं ध्यायेत्, सच्चिदानन्द-लक्षणम् ।

सर्व - तेजो - मयं देवि ! स - चराचर - विग्रहम् ।।

गोल वृत्त पर आधा श्वेत, आधा लाल चिह्न लगाकर उस पर टार्च से प्रकाश डाल कर देखने से जिस प्रकार रक्त-शुक्ल चिह्न ज्ञात होंगे, उसी प्रकार मूलाधार, हृदय, मस्तक में ध्यान करना चाहिए। ध्यान करते समय मन की कल्पना से किसी समय सावयव स्त्री-पुरुष की आभा प्रकट होगी। इसी को 'रक्त-शुक्ल-प्रभा-मिश्रं अतर्क्यं त्रैपुरं महः' कहा है। यदि विन्दु को श्वेत-श्याम रँगकर ध्यान में लायें, तो वही विन्दु लक्ष्मी-नारायण, सीता-राम या राधा-कृष्ण की भावना देगा।

समय भले ही रंग बदले, 'कौल' को सम्प्रदाय बदलना नहीं पड़ता। समय ही उसके ध्यान को बदल देता है। वासना में जो रस प्रधान होगा, वही देवता 'विन्दु' पर आएगा और समयोचित चरित्र से युक्त उसका पूजन करना होगा। 'कौल'-सम्प्रदाय भाव-भावना से भरा हुआ है। एक ही बीज शब्द-ब्रह्म के मार्ग को पकड़कर भावना-मय ईश्वर का पुजारी किंवा सेवक बना देता है। भाव को उदित करने से ही 'मद्य' का नाम 'कारण' रखा गया है। प्रकट रूप से उसका भोग लगाने से धन और मर्यादा दोनों की हानि होती है। इसी से उसे गोपनीय रखा गया है।

कौल अपने-पराये को गोपाल, वटुक, गणेश के रूप में देखता है। बहू, भार्या को लक्ष्मी, सरस्वती मानता है। माता को श्रीपार्वती समझता है। वह गुरु को पर-ब्रह्म की भावना से पूजता है। प्रातः-समय से अहोरात्र सारा समय कौल नित्य देवाराधना में ही बिताता है और दुनियादारी भी करता है। संसार ही उसका मन्दिर है, हृदय पुजारी, मन सहयोगी साधक (सामयिक), बुद्धि शक्ति और आत्मा गुरु-रूप है। कौल-धर्म की पूजा-विधि क्या है। ध्यान दीजिए--

हृत्-पद्मेनासनं दद्यात् सहस्राराच्युतामृतैः। पाद्यं चरणयोर्दद्यान्मनस्त्वर्घ्यं प्रकल्पयेत् ।।
स्वर्ण-पात्रे तज्जलं च दद्यादाचमनं मुखे। मधुपर्कं मुखे दद्यात् पुनराचमनीयकम् ।।
तेनामृतेन सर्वाङ्गे स्नानीयमपि कल्पयेत्। आकाश-तत्त्वं वसनं नानाभरणमेव च ।।
चतुर्विंशति-तत्त्वेन गन्धं दद्याद् विचक्षणः। मानसोत्थं च कुसुमं कुंकुमं रक्त-चन्दनम् ।।
चित्तं प्रकल्पयेत् पुष्पं धूपं प्राणान् नियोजयेत्। तेजस्तत्त्वं च दीपं च नैवेद्यं हि सुधाम्बुधि ।।
अनाहत-ध्वनिं घण्टां वायु-तत्त्वं च चामरं। नृत्यमिन्द्रिय-कर्माणि चाञ्चल्यं मनसस्तथा ।।
पुष्पं नाना-विधं दद्यादात्मनो भाव-सिद्धये। अमायमनहङ्कारमरागममदं तथा ।।
अमोहकमदम्भं च अद्वेषाक्षोभके तथा। अमात्सर्यमलोभं च दश पुष्पं प्रकीर्त्तितम् ।।
अहिंसा परमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रिय-निग्रहः। दया-क्षमा-ज्ञान-पुष्पं पञ्च पुष्पं ततः परम् ।।
इति पञ्च-दशैः पुष्पैर्भाव-रूपैः प्रपूजयेत्। दधि-क्षीरं सागरं च नाना-मूल-फलान्वितम् ।।
भक्ष्यं भोज्यं तथा चोष्यं लेह्यं पेयं च चर्वणं। कुलोत्थं चैव पानीयं ताम्बूलं च निवेदयेत् ।।
काम-क्रोधौ विघ्न-कृतौ बलिं दत्वा जपं चरेत्, माला वर्णमयी प्रोक्ता कुण्डली-सूत्रयन्त्रिता ।।
स-विन्दु-वर्णमुच्चार्य मूल-मन्त्रं समुच्चरेत्। अकारादि-क्षकारान्तमनुलोमानुलोमतः ।।
अष्ट-वर्गान्तिमैर्वर्णैः सह-मूलमथाष्टकम्। एवमष्टोत्तर-शतं जप्त्वाऽनेन समर्पयेत् ।।
सर्वान्तरात्म-निलये स्वात्म-ज्योति-स्वरूपिणि। गृहाणान्तर्जपं मातराद्ये तारे नमोऽस्तु ते ।।

हृदय-पद्म पर 'आसन' दे। मस्तिष्क के सहस्र-दल-कमल से टपके हुए अमृत का माँ के चरणों में 'पाद्य' दे। मन का 'अर्घ्य' निवेदित करे। उसी अमृत को कल्पित स्वर्ण-पात्र में भरकर 'आचमन' के लिए दे। उसी अमृत से 'मधुपर्क', उसके पश्चात् का 'आचमनीय' और 'स्नान' कल्पित करे। आकाश-तत्त्व से आभूषणों और 'वस्त्रों' की परिकल्पना करे। २४ तत्वों का 'गन्ध' दे। मन की मनोरम भावनाओं से 'पुष्प धूप' और 'सुगन्ध' प्रदान करे। तेज-तत्व का 'दीप' जलाये। सुधाम्बुधि का 'नैवेद्य' दे। अनाहत-ध्वनि का 'घण्टा'-नाद, वायु-तत्व का 'चँवर', इन्द्रियों के विविध कार्यों और मन की चञ्चलता को 'नृत्य'-रूप में प्रस्तुत करे। विभिन्न मनोभावों को 'पुष्प'—रूप में अर्पित करे। १ अमाय, २ अनहङ्कार, ३ अराग, ४ अमद, ५ अमोह, ६ अदम्भ, ७ अद्वेष, ८ अक्षोभ, ९ अमात्सर्य, १० अलोभ, ११ अहिंसा, १२ इन्द्रिय-दमन, १३ दया, १४ क्षमा और १५ ज्ञान—ये पन्द्रह पुष्प 'पूजा' के लिए सुलभ हैं। दधि और क्षीर-सागरों को नाना फूलों और फलों से युक्त कर 'भक्ष्य', 'चोष्य', 'लेह्य' और 'पेय' की कल्पना करे। कुल-जल का 'ताम्बूल' निवेदित करे। काम और क्रोध की 'बलि' दे। कुण्डलिनी के सूत्र की 'माला' कल्पित कर उस पर विन्दु-युक्त वर्णों का उच्चारण करता हुआ मूल-मन्त्र का 'जप' करे। अकार से क्षकार तक और क्षकार से अकार तक—अनुलोम और विलोम जप करे। मूल-मन्त्र -युक्त आठों वर्गों के आदि या अन्तिम वर्णों का जप करे। इस प्रकार १०८ जप करे। अन्त में प्रकाश-स्वरूपिणी सर्वात्म-ज्योति-मातः आपको यह समर्पित है—यह कहकर उक्त जप का फल माँ को अर्पित कर दे।

कौल-धर्म का यह पूजन करना क्या आपके लिए कठिन है? इस विधि से आप अश्वमेध, वाजपेय, अतिरात्र, महारात्र किसी भी यज्ञ की पद्धति से आत्म-याग निरन्तर कर सकते हैं—कोई भी किसी प्रकार की बाधा नहीं डाल सकता। न अभक्ष्याभक्ष्य, न अगम्यागमन आदि के प्रायश्चित्त का भय है। सब पुण्य ही पुण्य है। सभी आचार्य सहमत होंगे, सम्प्रदाय भी मान्यता देंगे। फिर आलस्य किस काम का? कौड़ी का भी खर्च नहीं, दौड़ने की जरूरत नहीं। 'एक-समित्-पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्म-निष्ठं'—ऐसा गुरु चाहिए। यह खोजना आपका काम है।

द्रौपदी यदि स्वयं नग्न होना चाहे, तो गोविन्द धोती पहनाने को दौड़ेगा नहीं। आपकी वासना-मय उपासना स्वयं गुप्त है। उसे आप खोलेंगे, तो खुलेगी। वाग्-यज्ञ से भावना-यज्ञ होता है। अतः जो सपर्या-विधि है, उसको बाँचने से भाव-प्राप्ति होगी। भाव से उत्कृष्ट वासना जागेगी, लौ भी लगेगी।

ऋग्वेद की एक कथा है कि त्रित नाम के आचार्य दो भाइयों के साथ राजा के यहाँ यज्ञ कराने गए। राजा से खूब दान-दक्षिणा मिली। लौटते समय भाइयों ने सारा धन छीन कर त्रित को एक कुएँ में ढकेल दिया किन्तु मित्र कुएँ में गिरकर भी यज्ञ की ही भावना में तन्मय रहे। फलतः इन्द्रादि देव आए और उन्हें कुएँ से निकालकर यज्ञ का भाग दिया। त्रित ने प्रार्थना की कि हमारे भाइयों को भी हवि दिया जाय। उनकी प्रार्थना स्वीकार की गई और आज भी 'इडापात्रीक्षाला' से उन्हें हवि मिलता है।

भावना-मय यज्ञ ही कौल-धर्म की मुख्य उपासना है। सङ्केत समझने में सावधानी की आवश्यकता है। हाँ, अन्यान्य आचार्यों के मत से कुछ उपचारों के द्वारा अपनी-अपनी परम्परा के अनुसार यज्ञ-पूजनादि नियमित रूप से करना आवश्यक है। तभी शक्ति-साधन हो सकेगा।

योगिराज परमहंस स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती

के

दो अद्भुत प्रसंग

तथा

उनकी तपसार्चित साधना-भूमि—'नवमुण्डी-सिद्धासन'

स्नेहादेश था बड़े भाई 'कुल-भूषण' जी का कि स्वामी विशुद्धानन्द जी के 'नव-मुण्डी सिद्धासन' पर भी कुछ प्रामाणिक लिखूं 'चण्डी'-पाठकों हेतु। मुझे हठात् स्मरण हो आया कि ८ अगस्त, १९८७ को मैं 'श्री विशुद्धानन कानन आश्रम', (सी २१/२, मलदहिया, वाराणसी) में गया था। दादा करुणामय बनर्जी ने मुझे कुछ पुस्तकें दी थीं। मैंने कुछ महत्व की बातें लिखी भी थीं।

रोमाञ्च हो आता है उस दिन का स्मरण करके। २ बजे से ५ बजे तक मैं उस 'सिद्धाश्रम' में रहा था। पता नहीं, क्या संयोग था। कि ज्यों ही मैं परमहंस श्री विशुद्धानन्द की तपसार्चित साधना-भूमि के द्वार पर पहुँचा कि एक वङ्ग-भाषी सज्जन ने स्वतः लौह कपाट खोलते हुए कहा—"आशुन, आशुन ! आपनि रङ्गनाथ जी ना ?"

मैं तो अवाक्, हत-वाक् ! उन्हें नमन किया श्रद्धानत होकर। हाथ-पैर धोकर दाहिने हाथ की ओर नाग-लिङ्ग के विशाल पुष्प-वृक्ष को प्रणाम किया; उसे अङ्क भेंटा। अपूर्व पुष्प ! शिव-लिङ्ग को घेरे हुए पन्नग-सदृश पराग-केशर ! यह वृक्ष परमहंस देव ने ही लगाया था। एक अदृश्य परम शक्ति-मयी विद्युत्-शक्ति मुझे आकर्षित कर रही थी रह-रह कर।

जिन सज्जन ने मुझे द्वार पर मेरा नाम लेकर आहूत किया था, उनका शुभ नाम था श्री सुधांशु मुखर्जी। उन्होंने कहा—"आपुनि 'नव-मुण्डी' आसनटि देखते चान ? किछु अनुभव कोरते चान, बोध हय, आशुन।"

मैं तो जैसे लोक-त्रय, अवस्था-त्रय, ताप-त्रय और शरीर-त्रय से परे हो चुका था। ज्यों ही मैं 'नव-मुण्डी आसन' के प्राचीर-द्वार से उस परम अद्भुत सिद्धासन-समीप पहुँचा, मुखर्जी दा ने कहा—"आपनि आपनार इष्ट-मन्त्र वा बीजाक्षर पद्मासने बोसे जप करुन।"

मैं १० मिनट तक पद्मासनस्थ रहा वहाँ। श्रीमज्जगन्मोहिनी त्रिपुरेश्वरी के बीज-त्रय का स-प्रणव ध्यान किया था मैंने। स्वयमेव कुम्भक ९० सेकण्ड का लग गया था। महदाश्चर्यमिदम् ! आज भी उसे स्मरण करके रोमाञ्च आपाद-मस्तक हो आता है।

'पञ्च-मुण्डी आसन' तो प्रायः मिल जाते हैं, पर 'नव-मुण्डी आसन' विश्व भर में कदाचित् केवल दो ही स्थानों पर हैं। एक यहाँ काशी के इस आश्रम में, दूसरा तिब्बत के अगम्य उस 'ज्ञानाञ्जन आश्रम' में—सिद्धाश्रम ज्ञान-गंज में।

इस आधुनिक युग में स्वामी श्री विशुद्धानन्द सरस्वती परमहंस देव सदृश वीराचारी कौल कदाचित् ही दृष्टि-गत हों। आनत-विनत परन्तु प्रचण्ड-तम शक्ति-सम्पन्न, ऋद्धि-सिद्धि-समर्थ। योनि-पीठ, मन्त्र-पीठ और मनः-पीठ——इन तीनों पीठों की साधना की थी परमहंस श्री ने तिब्बत के ज्ञान-गंज आश्रम में। एवं ही श्रूयते मया कर्ण-परम्परया। ऐसे महान् सिद्ध महा-पुरुष के कुछ प्रसङ्गों की चर्चा करनी उचित ही होगी।

१. अहङ्कार-दहन

बर्दवान (वङ्ग प्रदेश) के रानीगंज बाजार में बाबा विशुद्धानन्द सन् १९११ से १९१३ तक रहे। श्री क्षेत्र-गोपाल वन्द्योपाध्याय बर्दवान के प्रतिष्ठित कर्म-काण्डी और फलित-ज्योतिषी थे। वयोवृद्ध थे ही, जात्या ब्राह्मण और वह

भी श्रीमुख शाण्डिल्य-गोत्रज होने का वर्ण-गत––कुल-गत दम्भ था उनमें। बाबा के यहाँ जब प्रथम बार वे पहुँचे, तो बाबा के ही आसन पर पार्श्व में बैठ गए। उस दिन बाबा कुछ नहीं बोले। दूसरी बार जब वन्द्योपाध्याय ने पुनः बाबा के आसन पर बगल में बैठने की प्रगल्भता की, तो किञ्चित् मुस्करा कर वे बोले—"आप वहाँ पृथक् आसन पर बैठिये। स्थान-भ्रष्टाः न शोभन्ते दन्ताः, केशाः, नखाः, नराः।"

वन्द्योपाध्याय मोशाय में अहङ्कार स्फूर्जित हुआ, बोले—"बाबा! आपनि ओ ब्राह्मण, तो आमिओ ब्राह्मण। आपनार-इ मतो आमारो अनेक शिष्य एवं यजमान। समाजे आमार प्रतिष्ठा आपनार चेये किछु कम नय। ता छाड़ा, आमि वयसे आपनार चेये बड़ो रयेछि। सेइ जन्ये आपनार एइ व्यवहार के आमि अत्यन्त अपमान-जनक एवं हेय मने करि।"

स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती ने धीर-गम्भीर, जलद-मन्द्र, सरस वाणी में निरहङ्कार-चित्तेन कहा––"बैनर्जी मोशाय! सत्तिकारेर ब्राह्मण काके बले; जानेन कि आपनि? यदि जानतेन आर आपनि ब्रह्म-तेजोद्दीप्त हइतेन, ता हले एइ रकम कथा बलते इ पारतेन ना। निजेइ भगवान् विष्णु ब्राह्मण भृगु ॠषिर चरण-धूलि निजेर वक्षे धारण करे रेखेछेन?"

क्षेत्रगोपाल बनर्जी तो अहङ्कार के सप्तक में चढ़े थे। बोले, 'एखुन सेइ रकम ब्राह्मण कि आछे कोथाओ? से काल चले गयेछे, जखुन ब्राह्मण निजेर नयनेर ब्रह्म-तेजेर द्वारा आगुन बार करे दिते पारतेन। सेइ क्षमता आज कोनो ब्राह्मणेर काछे नेइ।"

बाबा मुस्कुराये। बोले––"से रकम ब्राह्मणेर सर्वथा लोप हय नाइ। साधारणतः हाटे-बाजारे, लोकालये नेइ से रकम ब्राह्मण। किन्तु देखून…"

और जरा टेढ़ी दृष्टि से बाबा ने क्षेत्रगोपाल के कन्धे की ओर देखा भर ही था कि उनकी शाल धू-धू करके भभक उठी! क्षेत्र बाबू ने चादर उतार फेंकी और वह ५ सेकण्ड में जलकर भस्मीभूत हो गई। क्षेत्रगोपाल मोशाय चरणों पर लोट गए बाबा के!!

२. अग्नि और पर्जन्य-बाणों का प्रदर्शन

बंगाल में पुरुलिया के पास है आल्दा रियासत। रियासत तो अब रही नहीं। उसके राजा श्री उद्धवनारायण सिंह की एक घटना की बात श्री नन्दलाल सेन गुप्त ने बाबा श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती के पौत्र स्व० श्रीसरोजमोहन चट्टोपाध्याय से २४ अक्टूबर, १९७२ को सुनी थी।

एक बार राजा ने बाबा श्री से पूछा कि महा-भारत में अग्नि और वायु-बाणों के प्रयोग की बात लिखी है, क्या वह सच है? बाबा बोले—"हाँ, बिल्कुल सच है। क्या तुम उसका प्रत्यक्ष प्रमाण देखना चाहते हो?"

उद्धवसिंह बोले––"गुरुदेव! यदि दिखा दें, तो बड़ी कृपा होगी।"

गुरुदेव ने कहा—"सामने जो सरकण्डे लगे हैं, उनमें से तीन कटवा कर मेरे पास ले आओ।"

तीनों में से एक सरकण्डे का छिलका उतरवा कर उसका एक धनुष बनाया गया। फिर बाबा ने उस पर कुछ मन्त्र पढ़ा, तो वह धातु का एक सुन्दर धनुष बन गया। अब दूसरे सरकण्डे को अभिमन्त्रित किया, तो वह स्टील का पैनी नोकवाला पुष्ट बाण बन गया। बाबा बोले––"देखो, यह एक सामान्य बाण और धनुष हैं।"

बाबा ने मन्त्र द्वारा अग्नि-देवता को बाण की नोक में प्रतिष्ठित कर दिया। फिर इस बाण को धनुष पर चढ़ाकर बाबा ने उसे सामने खड़े एक बड़े बरगद के वृक्ष पर छोड़ दिया। क्षण मात्र में वह बाण अत्यन्त घोर ध्वनि करता हुआ बड़े वेग के साथ पेड़ को चीरता हुआ पार कर गया तथा उस वृक्ष में आग लग गई। बाबा बोले––"पूरा फायर-ब्रिगेड भी इस पेड़ की अग्नि को शान्त नहीं कर सकता।"

फिर उन्होंने तीसरा सरकण्डा लिया और उसका बाण बनाकर उसे भी अभिमन्त्रित किया। तदुपरान्त उस बाण की नोक पर एक अन्य मन्त्र द्वारा वरुण देवता का आवाहन किया। इस बाण को धनुष पर चढ़ाकर उन्होंने प्रचण्ड रूप से जलते हुये उक्त बरगद के वृक्ष पर छोड़ा, तो देखते-ही-देखते पेड़ की आग बुझ गई।

अग्नि और पर्जन्य-बाण का प्रत्यक्ष प्रयोग बाबा द्वारा ही सम्भव था। देखकर सभी अवाक् रह गये।

ये दो घटनायें तो उन परम सिद्ध पुरुष की सामान्य झलक मात्र हैं। नास्तिक और शङ्कालु व्यक्तियों को विश्वास दिलाने के लिए उन्होंने सहस्त्रों बार अपनी विभूति का प्रदर्शन किया था। विदेशी पॉल ब्रण्टन तो उनका भक्त ही बन गया था।

पूज्य स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती के 'नव-मुण्डी आसन' में १ मनुष्य, २ बन-मानुष, ३ हस्ति, ४ सिंह, ५ व्याघ्र, ६ शृगाल, ७ शल्लकी (साही या सेही), ८ विडाल और ९ सर्प के मुण्ड अभिमन्त्रित कर समाहित हुये हैं। इस सिद्धासन में छाग-बलि की अनुमति स्वामी जी ने दी थी शनिवार ५ अक्टूबर, सन् १९३५ को। उस दिन शारदीय नवरात्र की अष्टमी थी, जब साधक के मन की ८ कलायें समाहित होकर महा-शक्ति के चरणों में तल्लीन हो जाती हैं। उल्लेखनीय है कि मन की १६ कलायें हैं क्योंकि 'चन्द्रमा मनसो जातः।'

'नव-मुण्डी आसन' के शक्ति-पीठ पर दश-महाविद्याओं में प्रथमा [महा-काली की पूजा का विधान है। इस पूजन के लिए शुद्ध क्षौमासन (रेशमी) ही प्रशस्त है क्योंकि तड़ित्-प्रभाव का यहाँ आधिक्य रहता है। शक्ति, शिव या विष्णु के मन्त्रों की भी साधना वेदी के पास की जाती रही है। तन्त्रों में—आगम शास्त्र में इस आसन की बड़ी महिमा बताई गई है।

अन्त में स्मरणीय है पश्चिम बंगाल के शस्य-श्यामल श्यामा और खंजना की माटी में, बर्दवान से १४ मील उत्तर-पूर्व भण्डारहिटी के पास अवस्थित वह पावन 'बण्डल' ग्राम, जहाँ श्री अखिलचन्द्र चट्टोपाध्याय की सह-धर्मिणी भार्या श्रीमती राजराजेश्वरी देवी की स्वर्ण-कुक्षि से यह अपूर्व पद्म-गन्धी हीरक रत्न ४ मार्च, १८५३ को मधु-मास की वसन्त ऋतु में विशुद्धानन्द के मानव-रूप में आविर्भूत हुआ था। तिरोभाव हुआ था इस ज्योति का १४ जुलाई, १९३७ को। शत-शत नमन काशी की उस परम विभूति को !

—पं० श्री रङ्गनाथ 'राकेश', वाराणसी (उ० प्र०)

कवि, कथाकार, समीक्षक, अनुवादक एवं वार्ताकार

परमहंस स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती जी का प्रधान उपदेश यह था कि— "प्रेम के बिना भगवत्-प्राप्ति नहीं हो सकती, शुद्ध भक्ति की परिणति से ही प्रेम का उदय होता है। जिस भक्ति की दृष्टि स्वार्थ-साधन की ओर हो, जिसकी जड़ में कामना का बीज हो, वह प्रेम के रूप में कभी परिणत नहीं हो सकती। वस्तुतः उसे भक्ति कहना ही उचित नहीं है। ऐसी भक्ति से यथा-सम्भव दूर रहना ही सच्चे साधक का कर्त्तव्य है।

—स्व० म० म० श्रीगोपीनाथ जी कविराज

महा-महोपाध्याय पं० नारायण शास्त्री खिस्ते

सन्त ज्ञानेश्वर के समय १३वीं शताब्दी से ही महाराष्ट्र के विद्वान् और सन्त काशी आने लगे थे। आज भी सन्त एकनाथ द्वारा प्रतिष्ठापित श्रीकृष्ण-मूर्ति महात्मा तैलङ्ग स्वामी के मन्दिर में है।

ईसा की १७वीं शताब्दी में खिस्ते-वंश के एक सम्पन्न पुरुष पं० शंकर पन्त खिस्ते राजकीय कार्य से बंगाल से वापस आने पर काशी में ही स्थिर हो गये तथा काशी में अपना विशाल भवन उन्होंने बनवाया। उनका शिव-मन्दिर आज भी श्री काल-भैरव के निकट वर्तमान है।

एक-दो पीढ़ियों तक वैभव और सम्पदा चली। आगे लक्ष्मी की चञ्चलता से धीरे-धीरे परिवार अत्यन्त क्षीण हो गया। उसमें शास्त्री जी के पिता पं० भैरवनाथ जी अत्यन्त सरल साधु-स्वभाव के पुरुष थे, अकिञ्चन-वृत्ति से अपना निर्वाह करते थे, किसी से कभी भी याचना उन्होंने नहीं की। उनके सन्तान बचती न थी, इससे बड़ा कष्ट था। वे प्रायः महात्मा तैलंग स्वामी जी के पास जाकर बैठते थे। एक बार बाबा ने उनकी तरफ दो फल फेंककर जाने का इशारा किया। उन्होंने उस प्रसाद को पत्नी को दिया। उसके प्रभाव से उनके दो पुत्र चिरंजीवी हुए—पं० नारायण शास्त्री तथा पं० मुकुन्द शास्त्री।

पं० नारायण शास्त्री जी का जन्म वैशाख सम्वत् १९४८ माघ शुक्ल चतुर्थी को हुआ था। दैव-संयोग से पिता की छत्र-छाया ६ वर्ष की ही उम्र में जाती रही। बड़े संकट की स्थिति थी। उस समय महाराष्ट्र के एक त्यागी विद्वान् पं० रामचन्द्र शास्त्री काले काशी में रहते थे, जो 'बाबा साहब' नाम से प्रसिद्ध थे। उन्होंने इन दोनों बालकों का भार अपने ऊपर लेकर उन्हें पढ़ाया तथा संस्कार-सम्पन्न बनाया।

बाबा साहब जैसा मार्ग-दर्शक प्रतिपालक गुरु इस जगत् में दुर्लभ ही है। न केवल विद्याध्यापन किन्तु शिष्यों को आध्यात्मिक शिक्षा देने में भी वे सदा तत्पर रहते थे। उनके निर्देशन तथा अनुग्रह से शास्त्री जी बाल्य-काल से ही बटुकभैरव की आराधना में तत्पर हो गये। खेलने की उम्र में शास्त्री जी पुरश्चरण-पर-पुरश्चरण किये जाते थे। उसके प्रभाव एवं सदाचरण से शास्त्री जी की प्रतिभा और तेजस्विता उत्तरोत्तर बढ़ती गई। उन्हीं बाबा साहब की आज्ञा से शास्त्री जी पार्थिवेश्वर की अर्चना भी करने लगे।

उन दिनों काशी और भारतवर्ष के सर्व-मान्य पण्डित महा-महोपाध्याय गंगाधर शास्त्री तैलङ्ग सी० आई० ई० का बड़ा प्रभाव था। वे उक्त बाबा साहब के गुरु थे। उनकी दृष्टि इस शिशु नारायण पर पड़ी। बाबा साहब के अनुरोध तथा शिष्य की योग्यता से आकृष्ट होकर श्री शास्त्री जी महाराज ने शुभ मुहूर्त में नारायण शास्त्री को त्रैपुर सम्प्रदाय में दीक्षित किया।

गुरु-कृपा तथा परिश्रम से अपने अध्ययन के समय से ही खिस्ते जी सभी विषयों में अग्रगामी रहे। शास्त्राध्ययन और उपासना दोनों अव्याहत चलती थीं। भगवती की कृपा से शास्त्री जी की कवित्व-शक्ति अपूर्व थी, संस्कृत-भाषा में धारा-प्रवाह गद्य-पद्य-रचना वे करते थे।

अध्ययन-काल में संस्कृत कालेज के संस्कृत-प्रेमी प्रिन्सिपल डा० वेनिस की भी कृपा-दृष्टि शास्त्री जी पर थी। उनके सहयोग से प्राचीन इतिहास, शिला-लेख आदि में भी शास्त्री जी का ज्ञान परिपुष्ट हो गया था। प्रसिद्ध विद्वान् महा-महोपाध्याय डा० गंगानाथ झा के समय में शास्त्री जी की नियुक्ति सरस्वती-भवन के उपाध्यक्ष तथा साहित्य के प्रोफेसर-पद पर हुई।

तीस-पैंतीस वर्ष के राजकीय सेवा-काल में शास्त्री जी ने चालीस से अधिक ग्रन्थों का सम्पादन-प्रकाशन आदि कार्य किया, जिनमें तन्त्र के ग्रन्थ श्रीविद्या-रत्न-सूत्र, दक्षिणामूर्ति-संहिता, त्रिपुरा-रहस्य (माहात्म्य-खण्ड), कर्पूर-स्तव-टीका आदि भी हैं। शास्त्री जी के विद्या-शिष्य विदेशी विद्वान् भी थे, जिनमें प्रो० नार्मन ब्राउन, प्रो० एडगर्टन आदि उल्लेखनीय हैं। प्राचीन परिपाटी के अनुसार शास्त्री जी नित्य सायंकाल छात्रों को घर में निःशुल्क पढ़ाते थे।

सन् १९४६ में ब्रिटिश शासन के अन्तिम वायसराय लार्ड वावेल ने शास्त्री जी को 'महा-महोपाध्याय' पदवी से सम्मानित किया तथा उ० प्र० के मुख्य मन्त्री श्री बाबू सम्पूर्णानन्द जी ने शास्त्री जी को प्रिन्सिपल-पद पर नियुक्त किया था।

एक समय बंगाल के तारकेश्वर मन्दिर का बड़ा मुकदमा चल रहा था। उसमें शास्त्री जी को, शङ्कराचार्य तन्त्रानुयायी थे, यह सिद्ध करना था। उसका कमीशन वाराणसी आया था, जिसमें शास्त्री जी ने लगातार चालीस दिनों तक अपने पक्ष के समर्थन में प्रमाणों की झड़ी लगा दी थी।

समय-परिवर्तन हो रहा था। आगम-शास्त्रीय स्वाध्याय चलता ही था, परन्तु 'पूर्णाभिषेक' के लिए योग्य गुरु नहीं मिला था। प्रसंग-वश शास्त्री जी का परिचय श्री भास्कर राय दीक्षित जी की अविच्छिन्न परम्परा के महान् आचार्य श्री रघुनाथ शास्त्री गोडबोले महाराज से हुआ। उनके जैसे निगमागम के वेत्ता और समर्थ पुरुष इस युग में दुर्लभ ही हैं। सन् १९४५ ई० में शास्त्री जी तथा उनके सुपुत्र श्री बटुकनाथ शास्त्री को भी श्री गोडबोले जी महाराज से 'दिव्य महा-साम्राज्याभिषेक' दीक्षा प्राप्त हुई।

श्री गोडबोले जी महाराज प्रसिद्धि-परांगमुख थे। वे प्रायः बड़ौदा, बम्बई और बुलडाणा (महाराष्ट्र) में रहते थे। उनके पास दूर-दूर से जिज्ञासु-गण समाधान के लिये आते थे।

श्री खिस्ते जी स्वभाव से सरल तथा विनोद-प्रिय थे। तपस्वी ब्राह्मणों की सहायता के लिये सर्वदा मुक्तहस्त थे। ब्राह्मणों से अनुष्ठान कराने की बड़ी अभिरुचि उनमें थी। व्यक्ति-गत जीवन में सब कामों से निवृत्त होकर वे रात्रि में अनुष्ठान पर बैठ जाते थे और मध्य रात्रि के बाद ही उठते थे। तिथि-पर्वानुसार विशेष पूजा बड़े सम्भार के साथ स्वयं करते और अन्य लोगों से भी करवाते थे। तपोबल से उनमें निग्रहानुग्रह-शक्ति का भी आविर्भाव हो गया था।

उपासकों के प्रति उनका हृदय विशेषतः सर्वदा उन्मुक्त रहता था। प्रयाग जाने पर वे आचार्य श्री देवीदत्त शुक्ल जी से अवश्य मिलते थे। शुक्ल जी ने अपने सुयोग्य शिष्य स्व-नाम-धन्य न्याय-मूर्ति पं० शिवनाथ जी काटजू के अनन्य सक्रिय सहयोग से सन् १९४२ के वासन्तिक नवरात्र से भारत के आध्यात्मिक जगत् में पहले-पहल शाक्त-धर्म पर प्रकाश डालनेवाली हिन्दी मासिक पत्रिका 'चण्डी' का प्रवर्तन किया था। खिस्ते जी शास्त्र-साधना से सम्बन्धित 'गोपनीयता'-सिद्धान्त के कट्टर पक्षपाती थे। यद्यपि उनकी मान्यता थी कि गुह्य रहस्यों को लोक-भाषा हिन्दी में प्रकाशित करना अनिष्टकर होगा, तथापि उन्होंने पूज्य शुक्ल जी के 'चण्डी'-प्रकाशन-जैसे अभूतपूर्व महत्-कार्य को अपना हार्दिक समर्थन प्रदान किया और एक लेख भी लिखकर प्रकाशनार्थ उन्हें भेंट किया, जो इसी विशेषाङ्क में पुनः प्रकाशित है।

शास्त्री जी का दीक्षा-दिन फाल्गुन शुक्ल एकादशी है। शरीर शिथिल हो जाने पर घर में ही रहते थे। अन्तिम समय वैशाख कृष्ण त्रयोदशी मेष संक्रान्ति सं० २०१८ में ७० वर्ष की आयु में ब्रह्म-विद्या श्रवण करते हुए शास्त्री जी शिवत्व में लीन हो गये।

शास्त्री जी के एक-मात्र पुत्र पं० बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते ने सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में साहित्य के प्रोफेसर पद पर कार्य कर १९७७ में अवकाश ग्रहण किया। वे अपने यशस्वी पिता की परम्परा की यथावत् रक्षा करते हुए आज भी ब्राह्मणोचित जीवन-यापन कर रहे हैं।

[आवरण-पृष्ठ २ का शेष]

(सहरसा), ७ श्रीराम सोलङ्की (जोधपुर), ८ के० ब्रह्मचारी (देवघर), ९ रामचन्द्रप्रसाद (दरभङ्गा), १० सुशीलकुमार लाल (पटना), ११ सच्चिदानन्द मिश्र (देवघर), १२ एन० सी० रावल (पंचमहाल, गुजरात), १३ वी० एस० राय (कटिहार), १४ चन्द्रिकाप्रसाद मिश्र (कटिहार), १५ छत्रधारीलाल दास (राँची), १६ प्रमोदकुमार झा (गोड्डा), १७ एम० बसन्तिया (गञ्जाम, उड़ीसा), १८ प्रियव्रतनारायण लाल (सहरसा), १९ मनमोहन झा (गोड्डा), २० नीलकंठ झा (देवघर)।

२१ मथुराप्रसाद दास (उपाध्यक्ष, अद्वैत शक्ति-साधना-सत्सङ्ग, बरौल, सहरसा), २२ रमेश चन्द्र वर्मा (सहरसा), २३ कृष्णदत्त झा (सहरसा), २४ गया ठाकुर (अमलोरी, सिवान), २५ विमल-नारायण ठाकुर (मधुबनी), २६ श्रवणकुमार झा (दरभङ्गा), २७ जयमङ्गल दुबे (ठीकहाँ, वैशाली), २८ डा० जवाहरप्रसाद सिंह (दरभङ्गा), २९ भोला झा (लगमा, सहरसा), ३० मिथिलेशकुमार पांडेय (भोजपुर), ३१ भुवनेश्वर झा (मिसरौलिया, मधुबनी), ३२ रामविलास सिंह (नालन्दा), ३३ सुभाषचन्द्र झा (दरभङ्गा), ३४ महेन्द्र झा (मधुबनी), ३५ कृष्णमुरारी तिवारी (पटना), ३६ रामजी मिश्र 'मनोहर' (पटना), ३७ विजय वत्स (पटना), ३८ शशिभूषण लाल (पटना), ३९ रामानन्दप्रसाद (रोहतास), ४० अमरनाथ झा (सहरसा), ४१ डा० श्रीरञ्जन सूरिदेव (पटना)।

आचार्य द्विवेदी—पण्डित देवीदत्त शुक्ल की निःस्पृह सम्पादन-परम्परा की प्रतिनिधि

अनूठी सचित्र स्मारिका

संपादक की वाणी

अप्रैल १९८८ से अपने दूसरे वर्ष में यह 'स्मारिका' हिन्दी-जगत् में नए प्रतिमान स्थापित कर रही है। इसके द्वारा सच्चा ज्ञान होता है कि—

* आचार्य द्विवेदी एवं सम्पादक-शिरोमणि पं० देवीदत्त शुक्ल ने राष्ट्र-भाषा हिन्दी के निर्माण, विकास और प्रचार के लिए कैसा और किस प्रकार का अभियान प्रारम्भ किया, जो अब भी चल रहा है।
* राष्ट्र-भाषा हिन्दी के माध्यम से साहित्य, अध्यात्म, आयुर्वेद और ज्योतिष आदि के क्षेत्र में निःस्पृह भाव से कौन कहाँ, क्या महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है।
* साहित्य, अध्यात्म, आयुर्वेद और ज्योतिष के द्वारा जीवन को किस प्रकार सार्थक बनाया जा सकता है।

'सम्पादक की वाणी' स्मारिका के अङ्कों की प्रशंसा मुक्त कण्ठ से देश के तपे-तपाये साहित्यकार और समाज-सेवी महानुभाव कर रहे हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि निर्धन बन्धुओं को यह 'स्मारिका' मुफ्त भेजी जाती है, केवल डाक-व्ययादि हेतु उन्हें पाँच रुपये वार्षिक भेजना होता है और जो यथा-शक्ति जितना दे सकते हैं, उतना प्रति-वर्ष भेजकर इस 'स्मारिका' के सहयोगी (१० रु०), सहायक (३० रु०), संरक्षक (१०० रु०), सम्वर्धक (३०० रु०), प्रतिपालक (५०० रु०) बन सकते हैं, जिनके शुभ नाम प्रत्येक अंक में छपते हैं और जिन्हें उपयोगी साहित्य उपहार-रूप में भेंट किया जाता है।

आज ही **'सम्पादक की वाणी'** की प्रति मँगाएँ और स्वयं उसकी अनूठी विशेषताओं का अनुभव करें।

—सम्पादक : रमादत्त शुक्ल

चण्डी-कार्यालय, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग (उ० प्र०)—२११००६

रजि० सं० ३२९८१/५७]   नवम्बर, १९८८   [रजि० सं० ए० डी० ९६

जगदम्बा की सामूहिक उपासना

कल्याण का एकमात्र मार्ग

('कौल-कल्पतरु' शुक्ल जी का 'चण्डी' १९४२ में प्रकाशित महत्त्वपूर्ण आह्वान)

आज अति ही दारुण समय उपस्थित है। माँ की शरण ग्रहण करने पर ही मानव का निस्तार हो सकता है। अब केवल वर्ष में दो बार माता की याद कर लेने से काम न चलेगा। चाहिये तो यह कि नित्य ही कुछ-न-कुछ समय निकाल कर माँ की याद अति श्रद्धा के साथ की जाय, परन्तु यदि यह सम्भव न हो, तो प्रति-मास शुक्ला अष्टमी को तो उनकी सेवा-पूजा में घण्टे-दो-घण्टे का समय अवश्य ही लगाया जाय।

क्या ही अच्छा हो, यदि प्रत्येक गाँव-शहर में किसी सुन्दर स्थान में शाक्त-बन्धु एकत्र होकर, घट-स्थापन-पूर्वक माँ का यजन-पूजन प्रारम्भ कर दें। घट-स्थापन-पूर्वक सविधि षोडशोपचार से माँ का पूजन कर चुकने पर जो लोग 'चण्डी' (श्रीदुर्गा सप्तशती) का पाठ कर सकते हों, 'चण्डी' का पाठ करें और जो पाठ न कर सकते हों, वे चुपचाप बैठ कर 'मन्त्र-जप' या 'नाम-जप' ही करें।

इस प्रकार जगदम्बा का यजन सामूहिक रूप से करने से लोक-कल्याण तो होगा ही, साथ ही परिवार-समाज में धार्मिक भावना का भी उदय होगा। ऐसा करने से ही आज कल्याण सम्भव है, दूसरा कोई उपाय नहीं है।

जगदम्बा की आराधना हेतु सद्यः फलदायी 'चण्डी' मासिक पत्रिका पढ़ें !

सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक : श्री ऋतशील शर्मा, परा वाणी प्रेस, इलाहाबाद—६